षोडराग्रंथ.

व्रजभापान्तरसहित।

गोखामिभूपण

श्री १०८ श्रीगोकुलनाथमहाराजकी

आज्ञानुसार-अनुवादक और प्रकाशक

देविंभेङ्श्रीद्वारकानाथात्मज

भट्टरमानाथशर्मा

मुद्रालय निर्णयसागर.

इस पुरतकके पुनः प्रकाशनका अधिकार खाधीन रक्खा है.

सन १९१४.

Published by Pandit Ramanath Shastri, Third Bhoiwada, Badamandir, Bhuleshwar, Bombay

Printed by R. Y. Shedge at the "Nirnaya-sagar" Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

प्रस्तावना.

बान्देवतावतार श्रीनदृष्टमाचार्यने वेद् गीता और श्रीनद्रागवत आदि मगवच्छात्रनके विस्तृतिसिद्धान्तनको संदेप करके यह पद्यस्प 'प्रकरण-प्रन्य' बनाये हैं। इनको 'पोडश्रयन्य' यह नाम कबस्ं प्रचित्तनयो सो अमीतक निश्चय नहीं होय है। कदाचित् इनके प्रतिपाद्यविषय हर-एक वेष्णवक्षे प्रतिदिन याद राखवे छायक हैं और वे सोछह सुस्य हैं यो सनझके राख्यो होय ऐसो अनुनान नात्र होय है. अन्तु तथापि ये प्रन्य अमृत्यरत है यामें तो कोई तरहको सन्देह नहीं है।

या प्रंथ में अनेक आचार्यनने कितनीक संस्कृतने टीकाएँ िखीं हैं। जिनके देखेवसुं प्रायः बहोततो संप्रदादको रहस्य नालुम होय जाय है। नामानेंनी याकी कितनीही टीका होय लकी हैं। परन्तु तिनमें कितनीक टीका प्रजनामाकी स्थितसुं नहीं लेसी होय रहीं है। यथि उनमें वितारहें तथापि नामानें विपर्यात होय जायवेसुं नृष्ठकोसी पतो नहीं लगे है। या प्रजनामान्तरमें प्रायः यह बहोत ध्यान राखो हे के सृष्ठको अर्थ सरल रीला सनझने आयसके अन्त्रयमें प्रायः अपेक्षित पद वरहीने हैं। और सनाम्रनी जहांतहांके विशवपदनको करदीनो है। तासुं विशेषसर- लता होयवेकी संनावना है। शीमद्रहमार्चायनकी वाणी अनुष्ठहेकगन्य है यह प्रन्यनके देखवेसुं नालुन पड है। किन्तु संस्कृतदीकानकेद्वारा जो कछ आराय सनझमें आयलाय वहनी केवल उनको अनुप्रह है। यासूही या नामान्तरमें भी नतुष्यसुलन प्रनादसुं कित्त स्वलित रह गये होय तो सर्युत्वनकूं चहिये के सुप्रारक्ते कान सलाकें या सनत्नें सर्वपरितोष होनो कठिन है सो युक्तभी है क्योंके—

गच्छतः स्वलनं काऽपि भवेदेव प्रमादतः। हसन्ति दुर्जनास्तत्र समाद्घति सज्जनाः॥ वतुवादकर्ताः

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषाटीकासहित

श्रीवल्लभाष्टक ।



श्रीमेद्वन्दावनेन्दुप्रकटितरसिकानंदसन्दोहरूप-स्फूर्जद्रासादिलीलाऽमृतजलिधभराकान्तसर्वोऽपि^३ शेश्वत् । तस्यैर्वात्मानुभावप्रकटनहृदयस्याज्ञयां प्रीदुरासी-इंट्रमो येः सैन्मनुष्याकृतिरंतिकरुणैसं प्रेपेंद्ये हुँताशम् ।१।

भावार्थ—हमेशां, श्रीवृन्दावनेन्दु (हरि)ने प्रकट कियो जो रिसकतको आनंद समृहरूप, सुन्द्ररासकों आदिलेकें जो लीला,सोई एक अमृतिसन्धु ताके प्रवाहस्ं आप्नावित करित्ये हें सर्वजन जाने, ऐसे, जो श्रीमदृहभाचार्य, और अपने प्रभावके प्रकट करवेकी है इच्छा जाकी, ऐसे उन्ही श्रीमद्वृन्दावनेन्द्रकी आज्ञास्ं सुतलपे अतिकरूणा करके मनुष्याकृतिकों थारण करते प्रकटभये. उन अग्निस्कर्प श्रीवहभाचार्यके, में शरण जाऊं हूं।

काटिन समास—श्रीमच तद्वृन्दावनं च तस्र इन्द्रः, तेन प्रकटितो यो रिसकानंदसंदोहरूपः स्फूर्जद्रासादिलीलाऽमृतजलिषमरः, तेन आक्रान्तः सर्वः येन सः । आत्मनः अनुमायः आत्मानुभायः, तस्र प्रकटने हृद्यं यस, तस्र । १ ।

नाऽऽविभूयाद्भवाँश्चेदधिधरणितलं भूतनाथोदिताऽसनार्गध्वान्तान्धतुल्या निगमपथगतौ देवसर्गेऽपि जाताः।
धौपाधीशं तदमे कथमपि मर्नुजाः प्राप्नुयुनेव देवीग्रिष्टिर्व्यर्था च भूयान्निजफलरिता देव! वेश्वानरेपा।२।
पदोपरिकृतानामङ्गानामनुतारेणाऽन्त्रयो योज्यः।

भावार्थ—हे देव, हे अग्निस्तरूप! जो आप या भूतलपे प्रकट न होते, तो वेदोक्तमार्गकी सरणीमें दैवसर्गमें भी पैदाभये, किन्तु महादेवके कहे असन्मार्गके अन्धकारमें अन्धेकी तरह भये, ये जीव, श्रीनंदनंदन श्रीकृष्णकृं कोईतरहस्ंभी नहीं प्राप्त होय सकते हे, और अपने श्रीहरिक्षपफलसं रहितभई यह देवी सृष्टिभी व्यर्थ होय जाती।

कठिनांशको समास—धरण्यात्तलं, घरणितले इति अधिघरणि-तलम् । भूतनाथेन उदिताः भूतनाथोदिताः, असन्तश्च ते मार्गाश्च अस न्मार्गाः भूतनाथोदिताश्च ते असन्मार्गाश्च, भूतनाथोदिताऽसन्मार्गाणां ध्वान्तं, भूतनाथोदिताऽसन्मार्गध्वान्तेन अंधतुल्याः ते । २ ।

र्नहाँन्यो वांगधीशाच्छुँतिगणवचसां भाँवमाँज्ञातुमीर्ष्ट यसात्सींध्वी स्वभावं प्रकटियति वेंधूर्र्येतः पत्युरेव । तेसाच्छीर्वेह्वभाख्य त्वदुदितवचनादेन्यथा रूपयंति श्वाँन्ता ये ते निसंगित्रिदशरिपुतया केवेह्वान्धंतमोगाः।३।

भावार्थ—नाणीके पतिके सिनाय दूसरो कोईभी श्रुतिगण-नके वचनके भावकूं जानवेके छिये समर्थ नहीं है, कारणके पतित्रता स्त्री अपने पतिके आगेही अपने आज्ञयकूं प्रकट करे है, तासं हे श्रीवहभाचार्य ! जो छोक आपके कहे वचननस्ं अन्यधा वेदनको अर्थ कहें हैं, वे स्वभावसं्हीं आसुरप्रकृति होयवेसंं श्रान्त होते केवल अन्धतमकूं प्राप्त होय हैं।

क० समा०—निसर्गेण त्रिद्शरिषुः निसर्गत्रिदशरिषुः तसमावः तत्ता, तया । केवलं च तदन्त्रं तमश्च केवलान्धंतमः, केवलान्धंतमसि गच्छन्ति ते ।३। प्रीदुर्भूतेन भूँमौ व्रजपतिचरणांभोजसेवाख्यवर्त क्रिंक्ने व्यक्ति क्रिंक्ने व्यक्ति क्रिंक्ने व्यक्ति मेंन्ये । व्यक्तिद्विक्तियर्ति क्रिंक्ने व्यक्ति क्रिंक्ने व्यक्ति क्रिंक्ने व्यक्ति क्रिंक्ने व्यक्ति क्रिंक्ने व्यक्ति क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्निक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्निक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्ने क्रिंक्निक्ने क्रिंक्ने क

भावार्थ—भूतलपे प्रकट होयकें आपनें श्रीहरिके चरण-कमलकी सेवा करवेको मार्ग, जो प्रकट कियो हे, सो निश्चय करके अपने भक्तनके लियेही प्रकटिकयो है, हे अग्निखरूप ! यह में मानूं हूं, कारण के यामार्गमें स्थित भक्त, कोईभी वस्तु, कैसी तरहसूंभी, कहूंभी रहकें, अपण करनो चाहे तो वा वस्तुकूं श्री-गोपीजनवद्धम अपने सुन्दर हासवारे मुखकमलमें धारण करें हैं।

क० समा०चरणौ अंमोजे इवेति चरणांमोजे, व्रजपतिश्वरणांमोजे, व्रज-पतिचरणांमोजयोः सेवा, सेव आख्या यस तत् व्रजपतिचरणांभोजसेवाख्यं, तच वर्रमच । ४।

उप्णत्वैकस्वभावोप्यतिर्शिशिरवचः पुंजपीयूपवृष्टी-रौतेंप्वत्युंग्रमोहासुरनृषु युंगपर्त्तापमंप्यंत्र कुंवेन् । स्वेसिनकृष्णास्यतां त्यं प्रकेंटयिस च नी भूतदेवत्व-भेतर्धस्मादीनंददं श्रीव्रंजजनिचये नींशकं चौंऽसुराग्नेः।५। भावार्थ—उण्णत्वको हे एक स्वभाव जिनको एसेभी, दीन-नके उपर शीतल वचनरूप अमृतवृष्टीकं और वडे मोहवारे आसुरनपे एक साथही तापभी करते आप, अपनेमें श्रीकृष्णास्य-पनेकं प्रकट करो हो, किन्तु अग्निपनो प्रकट नहीं करो हो, कारण के यह आपको स्वरूप व्रजनसमूहमें तो आनंद देय है और आसुराग्निकं नाश करे है। कठि० समा०—अतिशिशिराणि च तानि वचांसि च, तेपां पुंजः, स पीयूषं च तस वृष्टयः ताः । ५ ।

आम्मायोक्तं यदंभोभवनमनैलतसंचं सत्यं विभी य-त्संगादी भूतंरूपादभवदनलेतः पुर्करं भूतेरूपम् । आनंदेकस्वरूपान्वदिधिभुँ यैदभूत्क्वेष्णसेवारसान्धि-श्चानंदेकस्वरूपस्तदिखिलमुचितं हेर्नुसाम्यं हि कार्ये । ६ ।

भावार्थ—वेदमें कह्यो जो अग्निसं जलको होनो सो सत्य है, हे प्रभो सृष्टिके आदिमें जैसे भूतस्वरूप अग्निसं भूतस्वरूप जलभयो, तेसें या भूतलपे आनंदस्वरूप आपसं यह श्रीकृष्णसे-वारूप रससमुद्रभी आनंदस्वरूपही भयो है, और यह उचितभी है, कारण के कार्यमें कारणको साहत्रय आवे है।

कठि० समा०--आनंद एकं खरूपं यस सः--तसात् । भुवीति-अधिमु । ६ ।

स्वामिन्छीवलभाग्ने ! क्षणमि भवतः सिक्षधाने कुपातः श्राणप्रेष्ठवजाधीश्वरवदनिदृद्धार्तितापो जनेर्षु । र्यत्प्रादुभीवमीमोत्युचिततरिमदं यैनु पश्चादपीत्थं र्देष्टेऽप्यस्मिन्मुखेन्दौ प्रचुरेतरमुदेन्येव तिचित्रमेतत् । ७ ।

भावार्थ—स्वामिन् अग्निस्वरूप आचार्यवर्य ! आपके क्षणभर सिन्निधानसूं, छपाकरके भक्तनकें प्राणनसूं प्रिय श्रीहरिके मुखकम-लंकी देखवेकी इच्छाको ताप होय है, सो उचित है, परन्तु पीछें श्रीहरिके मुखकमलकूं देखकेंभी विशेषतर ताप होय है, यह अति आश्चर्य है। प्रथम औत्सुक्यको ताप और पीछें विरहस्र्ं ताप, यों विरोधको परिहार समझनो।

कठि० समा०—श्रीवहाम एवं अधिः, तत्तंबुद्धी । ७ । श्रीनाद्यंधकारप्रशमनपद्धताख्यापनाय त्रिंछोक्या-मग्नित्त्रं विणितं तें केविभिरिष सदा वस्तुतः कृष्ण एवं । श्रीदुर्भूतो भवानित्यंतुभवनिगमाद्यक्तमानेरवेर्त्यं र्वां श्रीश्रीवहाभेमें निविछवुधजना गोर्क्वेहेशं भेजन्ते । ८ ।

। इतिश्रीविद्रलदीक्षितकृतं श्रीवहःभाष्टकं सम्पूर्णम् ।

भावार्ध—या भूतलपे पण्डितनने आपको अग्निपनो केवल अज्ञानरूप अंधकारके दूर करवेको चातुर्य प्रकटकरवेके लिये ही कह्यो है, वास्तवमें तो आप श्रीकृष्णही प्रकट भये हो ऐसें अनुभव और शास्त्रादिके प्रमाणनसूं जानकें, हे श्रीवहभाचार्य! सर्व विद्वान् आपकृं गोकुलेश जानकेहीं भजें हैं। ८।

कठि० समास-अज्ञानादि एव अंधकारः, तस्य प्रशमनं, तसिन् पट्टता, तसाः स्थापनं तसी।

इतिधीवह्रभाष्टकवजमावा सम्पूर्णा।

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

त्रजभापामें.

। श्रीयमुनाष्टककी विवृति।

जयन्ति वल्लभाचार्यनखचन्द्रमरीचयः। यानन्तरा मादृशानां विस्पष्टार्था न तद्गिरः॥ १॥

या श्रीयमुनाष्ट्रके अर्थज्ञानपूर्वक पाठ करवेसों भजनानंद्की सिद्धि होयगी या आशयसों श्रीमद्वहभाचार्य आठ श्लोकनकेद्वारा श्रीयमुनाजीके स्वरूपको वर्णन करें हैं।

> नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम् । तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना सुरासुरसुपूजितस्मरिपतुः श्रियं विश्वतीम् । १।

अन्वय—सकल सिद्धिहेतुं, मुरारिपद्पंकजस्फुरद्मंद्रेणृत्क-टाम्, तटस्थनवकाननप्रकटमोद्पुष्पाम्बुना सुरासुरसुपूजितस्मरिपतुः श्रियं विश्रतीं, यसुनां अहं सुदा नमामि ।

भावार्थ—पुष्टिमार्गीय समस्त सिद्धिनकों देयवेवारीं, और जलको दोषरूप मुरनामक जो दैस ताय मारनवारे श्रीकृष्णके वरणारिवन्दमें शोभायमान विशेषरेणु है अधिक जिनमें ऐसीं, और दोनो किनारेनपै लगे वनके प्रकटसुगन्धवारे पुष्पनसों युक्त जलकरिके, देवदानवादिसों पूजित प्रसुम्नजीके पिता श्रीकृष्णकी

खरूपशोभाकों धारण करें ऐसी श्रीयमुनाजीकों में आनन्दसों प्रणाम कर्र हूं।

कठिनांशको समास—मुरारिपद्पंकजयोः रफुरन्ती चासौ अमन्दरे-णुश्र । मुरारिपद्पंकजस्फुरदमंदरेणुः उत्कटा यसां सा-ताम् । १ ।

> किंदगिरिमस्तके पतदमंदपूरोज्ज्वला विलासगमनोहसस्प्रकटगंडशेलोन्नता । सघोपगतिदंतुराऽसमधिरूढदोलोत्तमा

मुकुन्दरतिवद्धिनी जयति पद्मवंधोः सुता।२।

अन्वय-किलन्द्गिरिमस्तके पतद्मंद्पृरोध्वला, विलास-गमनोहसत्प्रकटगंडशैलोन्नता, सघोपगतिदंतुरा, असमधिरूढ-दोलोत्तमा, मुकुन्द्रतिवर्द्धिनी पद्मवंधोः मुता जयति ।

भावार्थ—किलन्द नामक पर्वतके शिखरपे गिरते वहुतसे प्रवाहसों उद्ध्वल दीखतीं, और विलासपूर्वक गमनसों शोभाय-मान और अच्छीतरह दीखतीं शिलान करिकें, उँची मालुम पडतीं, और ध्वनिसहित चलवेसों नतोन्नत (उंचीनीची) होतीं, ताहीसों मानो उत्तम हिन्दोलामें अच्छीतरह नहीं वैठी होंय कहा ऐसी दीखतीं ऐसीं, श्रीकृष्णमे प्रीतिकों वढायवेवारीं श्री-सूर्यकी पुत्री श्रीयसुनाजी सर्वोत्कर्पसों विराजमान हैं।

किंट॰ समास—विलासेन गमनं विलासगमनं, प्रकटाश्चते गंडशेलाश्च प्रकटगंडशेलाः, विलासगमनेन उद्धसन्तश्चते प्रकटगंडशेलाश्च विलासगमनो-इसत्प्रकटगंडशेलाः विलासगमनोइसत्प्रकटगंडशेलैः उन्नता सा । २ ।

> भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः।

तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका-नितंवतटसुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम् । ३ ।

अन्वय-भुवनपावनीं, भुवं अधिगतां, प्रियाभिः इव अनेक स्वनैः ग्रुकमयूरहंसादिभिः सेवितां, तरङ्गभुजकंकणप्रकटमुक्तिका-त्रालुकानितंबतटसुन्दरीं कृष्णतुर्यप्रियां नमत।

भावार्थ—सकल लोककों पिवत्र करनवारीं, और याहीके लिये भूतलपें पिधारीं, तथा प्रियसखीनकी तरह विविध प्रकारसो बोलवे वारे सूआ मोर हंसआदि पक्षीन करिकें सेवित, और लहर- रूप भुजानके धारण किये कंकणनमें प्रकट दीखती मोती वैसी चमकती रेणुसों युक्त कटिपश्चाद्भागसों सोभायमान ऐसीं, श्रीकृष्णकी चोथी पटरानी श्रीयमुनाजीकों सर्वलोक प्रणाम करो।

. कठि० समास—तरंगा एव भुनौ तरंगभुनौ, तयोः कंकणानि तरंग-भुनकंकणिन, तेषु प्रकटा तरंगभुनकंकणप्रकटा, मुक्तिका इववालुका मुक्तिका-वालुका, तरंगभुनकंकणप्रकटाचासौ मुक्तिकावालुका च तरंगभुनकंकण-प्रकटमुक्तिकावालुका, तया युक्तं च तत् नितंवतटं च, तरंगभुनकंकण-प्रकटमुक्तिकावालुकानितंवतटम्, तेन सुन्दरी, ताम् । ३ ।

> अनंतगुणभूपिते शिवविरंचिदेवस्तुते घनाघनिमे सदा ध्रुवपराशरामीष्टदे। विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते कृपाजलिघसंश्रिते मम मनःसुखं भावय। ४।

अन्वय-अनंतगुणभूषिते, शिवविरंचिदेवस्तुते, घनाघन-निभे, ध्रुवपराशराभीष्टदे, विश्चद्धमथुरात्तटे, सकलगोपगोपीवृते, कृपाजलिषसंश्रिते सदा मम मनःसुखं भावय । मावार्थ—अनंत गुणनसों भूपित, और शिवब्रह्मा आहि देवतानसों स्तुति करी गई, और सघन मेघ सहश कान्तिवारी जीर ध्रुव पराशर आहि ऋषिनकों सकल मनोरथके देनवारी, और भगवहीलाधाम मथुराजी जाके तटपे हैं, और समय गोपगोपाइनानसों शोभित, और अनुप्रहके समुद्र श्रीकृष्णके आश्रयमें रहनवारी हे श्रीयमुनाजी आप मेरे मनके आनन्दको विचार करो, अर्थात् जैसें मेरे मनकृं सुख होय तैसें करो। यह श्लोक श्रीयमुनाजी और श्रीकृष्णमें समानता वतायवे वारो है, तासूं यह सव विशेषण श्रीकृष्णमेंभी लगे हैं। वा पक्षमें यह अर्थ करनो कि हे श्रीयमुनाजी! एसे श्रीकृष्ण भगवानमें मेरे मनकी प्रीतिकृं कराओ।

कठि० समास—अनंताश्च ते गुणाश्च तेर्भूषिता अनंतगुणभूषिता तत्तंबुद्धो । श्रीकृष्णपक्षे, अनंतगुणेर्भूषितस्तसिन् । एवं सर्वत्राप्यूह्मम् । ४।

यया चरणपद्मजा मुरिरपोः प्रियंभावुका समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् । तया सद्दशतामियात्कमलजा सपत्नीव य-द्धरिप्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ५

अन्त्रय--यया समागमनतः चरणपद्मजा मुरिरपोः प्रियं-भावुका, सेवतां भुक्तिमुक्तिदा अभवत्, तया सपत्नी इव सदृशतां (का) इयात्, यत् (इयात्-तिहं) कमलजा इयात्, तया हरि-प्रियकलिन्द्या मे मनिस सदा स्वीयताम्।

भावार्थ--जिन श्रीयमुनाजीके संग मिलवेसों गंगाजी भग-वान्के प्रिय करवेवारी भई और अपने सेवकनकों समप्रसिद्धि देयवेवारी भई, उन श्रीयमुनाजीके, सौतकीतरह समानभावकों कौन प्राप्त होय, यदि होंय तो श्रीलक्ष्मीजीही प्राप्त होंय, एसीं भगवानकों अतिप्रिय श्रीयमुनाजी मेरे हृद्यमें सदा निवास करो।

कटि॰ समास—समानः पतिर्यसाः सा। किं वतीति, हरिषिया चासौं किंग्दा च, तथा । ५ ।

> नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्धतं न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः । यमोपि भगिनीसुतान्कथमु हंति दुष्टानपि प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः । ६।

अन्वय—हे यमुने सदा नमः अस्तु, तव चरित्रं अत्यद्भुतं (अस्ति) ते पयःपानतः जातु यमयातना न भवति यमः अपि दुष्टान् अपि भगिनीसुतान् उ (अहो) कथं हन्ति, तव सेवनात् यथा गोपिकाः (तथा) हरेः प्रियः भवति।

भावार्थ—हे श्रीयमुनाजी आपकों सदा नमस्कार हो, आ-पके चरित्र वहुत आश्चर्यकरवेवारेहैं, आपके जलके पानकरवेसों कभी यमसंवंधी पीडा नहीं होय है, यमराजाभी दुष्ट ऐसेभी अपनी भेनके पुत्रनकूं कैसें मारै; आपकी सेवा करवेसों श्रीगो-पीजननकी तरह (जीवभी) श्रीहरिकों प्रिय होय है।

कठिनांश समास—पयसःपानं पयःपानं, पयःपानात् इति पयःपानतः ।

ममाऽस्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता न दुर्लभतमा रतिर्मुरिएगौ मुकुन्दप्रिये। अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं संगमा-त्तवेव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितेः ।७। अन्वय—हे मुकुन्दिपये ! तव सिन्नधी मम तनुनवत्वं अस्तु, एतावता मुरिरेपी रितः दुर्लभतमा न (अस्ति), अतः तव लालना अस्तु, सुरधुनी तव एव संगमात् भुवि परं कीर्तिता, तु पुष्टि-स्थितेः कदा अपि न (कीर्तिता) ।

भावार्थ—हे हरिप्रिय यमुनाजी आपके निकटमें मेरो शरीर दिन्य नवीन होय जाय, अर्थात् छीछामें प्रवेश करवेछायक अटोकिक होयजाय, इतनेसोंही मुरदानवके मारनवारे श्रीकृष्णमें श्रीतिहोनी अतिर्दुर्छभ नहीं है, ताकारणसों आपके (स्तुतिह्प) छाडचाव हो, श्रीगंगाजी आपके ही समागमसों भूतलमें स्तुतिक्प) करी गई हैं, किन्तु पृष्टिस्थित जीवनने याविपयमें आपके सिवाय उनकी स्तुति नहीं करी है, क्यों कि उनसों मुक्ति मिले हैं, परन्तु छीछोपयोगी देह नहीं मिले हैं। ७।

स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपितः ! प्रिये ! हरेर्यदनु सेवया भवति सौंख्यमामोक्षतः । इयं तव कथाऽधिका सकलगोपिकासंगम-

स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः। ८। अन्वय—कमलजासपितः प्रिये ! तव स्तुतिं कः करोति, यत् हरेः अनु सेवया आमोक्षतः सौख्यं भवति, तव कथा इयं अधिका, (यत्) सकलगात्रजैः सकलगोपिकासंगमस्मरश्रम-जलाणुभिः संगमः भवति।

भावार्थ-- लक्ष्मीकी सपित (सात) और हरिकों प्रिय हेश्रीय-मुनाजी! आपकी स्तुति कौन करसके, कारण के जो श्रीहरिके पीछे लक्ष्मीकी भी सेवा करे, तो ताकों मोछ्रपर्यन्तको सुख मिले है, परन्तु आपकी तो कथा इतनी अधिक है, के सर्व अंगसों इत्पन्न भये, जो सकल गोपीजन सों श्रीप्रमुकी लीला, ताके संबंधी जो प्रस्तेद्जल उनके विन्दुनसों आपको संगम होय है।

कठि॰ समास —सकल्गोपिकाभिः संगमः सकल्गोपिकासंगमः, तेन सरः सकल्गोपिकासंगमसरः, तस्र श्रमजलं सकल्गोपिकासंगमसरश्रम-जलं, तस्र अणवः, तैः । ८ ।

> तवाष्टकिमदं मुदा पठित सूरसूते सदा समस्तदुरितक्षयो भवित वे मुकुन्दे रितः । तया सकलिसिद्धयो मुरिरपुश्च संतुष्यिति स्वभावविजयो भवेद्धदित वल्लभः श्रीहरेः ॥ ९॥ इतिश्री शीमहहभावायेविरिवतं यसुनाष्टकं सम्पूर्णम्।

अन्त्रय—हे स्रस्ते ! तव इदं अष्टकं (यः) सदा मुदा पठित (तस्त) समस्तद्वरितक्षयो भवति, वै मुक्कन्दे रितः भवित, तथा सकलसिद्धयः (भवन्ति) च मुरिरपुः संतुष्यिति, स्वभाविन-जयः भवेत् (इति) श्रीहरेः वद्यभः वदति ।

भावार्थ—हे स्प्रेकी पुत्री श्रीयमुनाजी आपके या यमुना-प्रक्को जो कोई सदा हर्षसों पाठ करेगो, ताके समग्र पापनको नाश होयगो और निश्चय करिके श्रीहरिमें श्रीति होयगी, और हरि श्रीति होयवेसों पुष्टिमार्गीय सिद्धि होयगी, तथा श्रीहरि श्रसत्र होंयगे, और यदि सभाव दुष्ट होय तो भगवद्गक्ति करवे लायक सभाव होय जाय है, एसें श्रीहरिके प्रिय श्रीवद्यभाचार्य कहें हैं॥ ९॥

॥ इति श्रीनजमापासहित श्रीयसुनाष्टक सम्पूर्ण ॥

॥ श्रीहरिः ॥

त्रजभाषामें.

वालवोधकी विवृति।

-see-

अब पुरुपार्धनके विषयमें होते सन्देहनकों दूर करवेके लिये श्रीमद्वहभाचार्य वालबोधनामक मंथको आरम्भ करें हैं।

> नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसंग्रहम्। वालप्रवोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम्।१।

अन्यय-सदानन्दं हरिं नत्वा वालप्रवोधनार्थाय सुविनिश्चितं सर्वसिद्धान्तसंत्रहं (अहं) वदामि ।

भावार्थ-सिचानंद श्रीकृष्णकों प्रणाम करकें, अपने हिताहितको न जानवंवारे जीवनकों ज्ञान करायवेके लिये वेद-शास्त्रद्वारा निश्चयिकये सर्वसिद्धान्तनके संग्रहकों में कहूं हूं।

कठि० समास-प्रकर्षेण योधनं प्रवोधनं, वालानां प्रवोधनं वाल-प्रवोधनं, वालप्रवोधनमेत्र अर्थः वालप्रवोधनार्थः, तस्र । १ ।

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीपिणाम्। जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिताः। २।

अन्वय—मनीपिणां धर्मार्थकाममोक्षाख्याः चलारः अर्थाः (सन्ति) ते जीवेश्वरविचारेण द्विधा हि विचारिताः।

भावार्थ- बुद्धिमान् पुरुपनके, धर्म अर्थ काम और मोक्ष नामके चार पुरुपार्थ हैं, अर्थात् मनुष्यकर्तव्य हैं, वे चारों पुरु- पार्थ जीव (ऋषिलोग) और ईश्वर (वेद) के विचारसूं दोतरह विचारे गये हैं, यह वात निश्चय है।

कठि० समास-धर्मार्थकाममोक्षाः आख्याः येपां ते । २।

अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः। लौकिका ऋपिभिः प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया । ३ ।

अन्वय—साध्यसाधनसंयुताः अस्टोकिकाः तु वेदोक्ताः, स्टी-किकाः तथा एव ईश्वरशिक्षया ऋषिभिः प्रोक्ताः ।

भावार्थ—साध्य (यज्ञादि) और साधन (सुक्सुवादि, यज्ञकी सव सामग्री) सों युक्त, अलौकिक अर्थात् ईश्वरके विचारे पुरुपार्थ तो वेदमें कहे हैं, और जीवविचारित पुरुपार्थ, भग-वान्की वैसी ही आज्ञा होयवेसूं ऋपिनने कहे हैं, अर्थात् याज्ञ-वल्क्यादिस्पृतिनमें कहे हैं।

कठिनांशसमास—साध्यं च साधनं च साध्यसाधने, ताम्यां संयुताः, ते । ३ ।

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः।

अन्वय--छौकिकान् तु (अहं) प्रवक्ष्यामि, यतः आद्याः वेदात् (वेदमाश्रिस) स्थिताः (सन्ति)।

भावार्थ—ऋषिनके विचारे पुरुपार्थनकों तो मैं कहूं हूं, कारणके पहले (ईश्वरविचारित अलौकिक) पुरुपार्थ, वेदको आश्रय लेके स्थित हैं अर्थात् वेदमें हैं, नि:संदेह होयवेसूं उनके कहवेकी जरूरत नहीं है।

धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च कमात् । ४। त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते ।

अन्वय-धर्मशांस्त्राणि च नीतिः च कामशास्त्राणि क्रमात् विवर्गसाधकानि इति (हेतोः) तिर्प्रणयः (अस्माभिः) न उच्यते।

भावार्थ--मन्वादि धर्मनिरूपण करवेवारे शास्त्र, और कामन्दकीयादि नीतिशास्त्र (अर्थशास्त्र) तथा वात्स्यायनादि कामशास्त्र, क्रमसों धर्म अर्थ काम इन त्रिवर्गके साधक हैं तासों इनको निर्णय हम नहीं करें हैं। ४।

> मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लोकिके परतः स्वतः । ५ । द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगो प्रकीर्तितौ । त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः । ६ ।

अन्त्रय—खतः परतः द्विधा छौिकके मोक्षे, द्वे द्वे (कृला इति यावत्) चलारि शास्त्राणि (सन्ति), तत्र त्यागात्यागविभा-गेन सांख्ययोगौ स्वतः प्रकीर्तिता, सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः (अस्ति)।

भावार्थ—खाश्रय और पराश्रय दो प्रकारके ऋषित्रिचारित मोक्ष्में दो दो करके चार शास्त्र हैं, उन चार शास्त्रनमें अनात्म-वस्तुको त्याग और अत्यागके भेदसों सांख्य और योग यह दोनों खाश्रय मोक्षशास्त्र कहे गये हैं, और सांख्यशास्त्रमें अनास्त्रवस्तुको त्याग करनो कहा है।

कठि० समास—त्यागश्च अत्यागश्च त्यागात्यागो, तयोः विभागः, तेन । ५-६ ।

1

सांख्योक्तमोक्षको सहस कहें हैं
अहंताममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ ।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते । ७।
अन्वय—अहंताममतानाशे सति सर्वथा निरहंकृतौ सति

(जीवे इति शेष:) यदा जीवः स्वरूपस्थः (भवति) (तदा) सः कृतार्थः निगद्यते ।

भावार्थ—देहकूं अपनो स्वरूप माननो सो अहंता, और भगवदीयवस्तुमें अपनेपनको भाव करनो सो ममता, इन दोनो-नके नाश होयवेसों जब जीव 'में कछु नहीं करूं हूं' एसें सर्वथा अहंकाररहित होयजाय और अपने स्वरूपमें स्थित होय तो वह जीव कृतार्थ कह्यो जाय है, अर्थात् जा जीवकूं, 'में ब्रह्मांश होय-वेसों ब्रह्मस्वरूप हूं' एसें ज्ञान होय वह जीव मुक्त कह्यो जाय है।

कांठ० समास-निर्गता अहंकृतिर्यसात् , सः, तसिन् । ७।

तदर्थं प्रक्रिया काचित्पुराणेऽपि निरूपिता । ऋपिभिनेहुधा प्रोक्ता फलमेकमनाह्यतः । ८ ।

अन्वय—तद्थे ऋपिभिः बहुधा प्रोक्ता काचित् प्रिकया पुराणे अपि निरूपिता अवाद्यतः एकं फलम् (भवति)।

भावार्थ—वा सांख्यमें कहे मोक्षके, लिये, ऋषिनने अनेक प्रकारसूं कही कोईक पद्धति (रीत) श्रीभागवतादि पुराणनमेंभी निरूपण करी है, अनीश्वर सांख्यकूं छोडकें सवको एक फल होय है।

कि समास—वाह्यात् इति वाह्यतः, न वाह्यतः अवाह्यतः। ८। अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि। यमादयस्तु कर्तच्याः सिद्धे योगे कृतार्थता। ९।

अन्वय-अलागे (सित) हि योगमार्गः हि लागः अपि मनसा एव (कर्तव्यः), तु यमादयः कर्तव्याः योगे सिद्धे (सित) कृतार्थता (भवति) भावार्थ—सर्व वस्तुको त्याग नहीं करवेमें योगमार्ग कहो। जाय है, यह वात निश्चय है, और त्यागभी मनसूं करनो, अर्थात् मानसिक त्याग करे, और यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि आदि आठ योगके अंग तो जरूर साधने चहियं, जो योग सिद्ध होय जाय तो वह जीवनमुक्त कहो। जाय है। ९।

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते । ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्र्पेण सुसेव्यते । १०। ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किंचिदुदीरितम् ।

अन्वय—पराश्रयेण मोक्षः तु द्विधा (अस्ति) स अपि निरूप्यते, ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातः तद्रृपेण सुसेन्यते, ते सर्वार्था आद्येन न, (यतः) किंचित् शास्त्रं उदीरितं (अस्ति)।

भावार्थ—देवनमें श्रेष्ठ विष्णु और शिवके आश्रयसों मोक्षतो दो प्रकारको है, वहभी कहाो जाय है, ब्रह्मा ब्राह्मणपनेकों प्राप्त भयो है, और ब्राह्मण रूपसूं पूजित है, तासों पूर्वोक्त चारों पुरु-पार्थ ब्रह्मासूं नहीं मिलें हैं, कारण, ब्रह्माने थोडोसो वैखानसमो-क्षशास्त्र कहाो है। १०।

अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ । ११ । वस्तुनः स्थितिसंहारकार्यो शास्त्रप्रवर्तकौ ।

अन्वय—अतः वस्तुनः श्वितिसंहारकार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ शिवः च विष्णुः च (द्वौ अपि) जगतः हितकारकौ (स्तः)।

भावार्थ-निह्मासों मोक्ष नहीं मिले है तासों, जगत्के संहार और स्थिति (पालन) करनेवारे, और पाशुपत तथा पश्च-पो. २ रात्र शास्त्रके चलायवेवारे, शिव और विष्णु दोनों जगत्के हित करवेवारे हैं।

कठि० समास—स्थितिश्र संहारश्च स्थितिसंहारो, तो कार्य ययोः, तो । ११ ।

> ब्रह्मेव तादृशं यस्मात्सर्वात्मकतयोदितौ । १२ । निर्दोपपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।

अन्वय—यसात्, तादृशं ब्रह्म एव, (तसात् तौ) सर्वास-कतया उदितौ, (किंच) तत्तच्छास्त्रे तयोः निर्देशपपूर्णगुणता कृता (अस्ति)।

भावार्थ-जाकारणसों ब्रह्मही विष्णु और शिवह्मप, होय गयो है, तासों, शास्त्रमें उन दोनोनकों सर्व जगत्के मूलकारण कहे हैं, और अपने २ शास्त्रमें उन दोनोनको दोपरहितपनो और सर्वगुणसंपत्रपनो कहाो है।

कठि० समास—सर्वस आत्मा सर्वात्मा, सर्वात्मा एव सर्वात्मकः, सर्वात्मकस भावः सर्वात्मकता, तया । निर्गताः दोपाः यसात् सः, पूर्णाः गुणाः यसिन् सः, निर्दोषश्चासौ पूर्णगुणश्च निर्दोषपूर्णगुणः, तस्य भावः तत्ता । १२ ।

भोगमोक्षफले दातुं शक्तो द्वाविष यद्यि । भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः । १३ । अन्वय—यद्यि भोगमोक्षफले दातुं द्वौ अपि शक्तौ (स्तः), तु भोगः शिवेन मोक्षः विष्णुना इति विनिश्चयः (अस्ति), ।

भावार्थ—यद्यपि भोग और मोक्षरूप फलकों देयवेमें शिव और विष्णु दोनोही समर्थ हैं, किन्तु भोग शिवसों और मोक्ष विष्णुसों मिले हैं यह शास्त्रको विशेष निश्चय है। १३। लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्को तन्न यच्छति किहिंचित्। अतिप्रियाय तदपि दीयते किचिदेव हि। १४।

अन्वय—लोके अपि यत् (वस्तु) प्रभुः भुङ्के, तत् (वस्तु) काईिचित् न यच्छिति, हि तत् अपि अतिप्रियाय कचित् एव दीयते।

भावार्थ-लोकमेंभी जो वस्तु प्रभु, स्वयं भोगे है, वा वस्तुकों कभीभी कोईकों नहीं देय है, किन्तु अपने भोगवेकी वा वस्तु-कोंभी अतिप्रिय भक्तके लिये कोईकसमय देय हैं। १४।

नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः। प्रत्येकं साधनं चैतद्वितीयार्थे महाञ्छ्रमः। १५।

अन्वय—नियतार्थप्रदानेन तदीयतं तदाश्रयः (सिद्धाति), एतत् प्रत्येकं साधनं, द्वितीयार्थे महान् श्रमः (भवति)।

भावार्थ—शिव और विष्णु यह दोनो देवता यदि अपने भोगवेमें नियमिकये पुरुपार्थकोभी दान करदें तो वासों भक्तको तदाश्रय और तदीयपनो जान्यो जाय है, यह शिवको भजन और विष्णुको भजन एक २ फलको साधन है, दूसरे पुरुपार्थके देते समय शिव और विष्णुक्टं (गुणपरिवर्तन करवेसों) अतिश्रम होय है। १५।

व्युत्पत्ति—तस अयं तदीयः, तदीयस भावः तदीयत्वम् । जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोपाभावाय सर्वदा । श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वे कार्ये हि सिद्ध्यति । १६।

अन्वय—जीवाः स्वभावतः दुष्टाः (सन्ति) दोपाभावाय सर्वदा श्रवणादि (कर्तव्यं) ततः प्रेम्णा सर्वे कार्यं सिद्धाति हि। भावार्थ—जीवमात्र अपने देवमनुष्य आसुर आदि स्वभा-वनसों दोषवारे हैं (स्वरूपस्ं नहीं), वा दोषकी निवृत्तिके लिये, श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन पूजा प्रणाम दासभाव मित्रभाव और आस्मनिवेदन यह भगवानकी नवधा भक्ति करनी चिह्ये, या नवधा भक्तिसों श्रीहरिमें प्रेम होय है, और वा प्रेमसों सर्व ऐहिक पारलैकिक कार्य सिद्ध होंय हैं, यह वात निश्चय है। १६।

> मोक्षरतु विष्णोः सुलभो भोगश्च शिवतस्तथा। समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेष्ट्रवम् । १७।

अन्त्रय—मोक्षः तु विष्णोः सुलभः (भवति), च तथा भोगः शिवतः (भवति), आसनः समर्पणेन हि ध्रुवं तृदीयतं भवेत्।

भावार्थ—मोक्ष तो विष्णुसं सुलभ है, और तेसेंही भोग शिवसं सुलभ है, आसीय सर्व वस्तुसहित आत्माके भगवचर-णारविन्द्में अर्पण करवेसों निश्चय करके निश्चल तदीयंपनी होय है। १७।

> अतदीयतया चापि केवलश्चेत्समाश्रितः। तदाश्रयतदीयत्ववुद्धे किञ्चित्समाचरेत्। १८। स्वधर्ममनुतिष्ठन्वे भारद्धेगुण्यमन्यथा। इत्येवं कथितं सर्वे नैतन्ज्ञाने स्वमः पुनः। १९।

। इतिश्रीवह्नमाचार्यविरचितो वाल्बीघः सम्पूर्णः ।

अन्त्रय—च अतदीयतया अपि चेत् केवल: समाश्रितः (ताई) तदाश्रयतदीयत्ववुद्धे स्तर्धम अनुतिष्ठन् किंचित् समा-चरेत्, अन्यया भारद्वेगुण्यं (भवति), एवं इति सर्व कथितं एतज्ज्ञाने पुन: भ्रम: न (भवति)।

भावार्थ—और पूर्णिधिकारी न होयवेसुं जो तदीयपनो सिद्ध न भयो होय तोभी यदि तदीयपनेसुंरहित जीव भगवान्को आश्रयमात्र छे, तो तदाश्रय और तदीयपनेको ज्ञान होयवेके छिये, अपने वणीश्रमधर्ममें रहतो, कछूक दीक्षाग्रहण अयवा मन्त्रोप-देशप्रहणरूप सदनुष्टान करें, जो एसो न करें तो दुगनो भार होय है अर्थात् एक वर्णाश्रमधर्मपरिद्यागरूपभार और दूसरो निष्फळश्रवणादि साधनरूपभार माथे पढे है, या रीतिसों यह सब हमने कहो। याको अच्छीतरह ज्ञान होय तो फिर पुरुपार्थ विपयमें सन्देह नहीं होय।

कठि० समास—तदीयस मानः तदीयता, न तदीयता अतदीयता, तया । तदाश्रयश्च तदीयत्वं च तदाश्रयतदीयत्वे, तयोः बुद्धिः तदाश्रय-तदीयत्वबुद्धिः, तसे । द्वौ गुणौ यस सः, द्विगुणः, तस मानः द्वैगुण्यं, मारस द्वैगुण्यं मारद्वैगुण्यम् । १८ । १९ ।

इतिश्री वाटवोषवजभाषादीका सम्पूर्णा.

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभापामें

सिद्धान्तमुक्तावलीकी विवृति।



नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् । कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता । १।

अन्वय—हरिं नला खसिद्धान्तविनिश्चयं (अहं) प्रवक्ष्यामि, सदा कृष्णसेवा काथी सा मानसी परा मता।

भावार्थ—सर्व दु:ख दूर करवेमें समर्थ श्रीकृष्णकूं नमन करके, अपने सिद्धान्तके निश्चयकों में कहूंगो, सर्वकालमें श्रीह-रिकी सेवा करनी चहिये, वह सेवा (भक्ति) मानसिक होनी, यह परम फलरूप कही है। १।

> चेतस्तस्रवणं सेवा तिसङ्घै तनुवित्तजा। ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्वहावोधनम्। २।

अन्वय—तत्प्रवणं चेतः सेवा, तिसद्धौ तनुवित्तजा (कर्त-च्या), ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिः (किंच) ब्रह्मवोधनं (भवति)।

भावार्थ-शिहरिमें चित्तको एकतान होनो ही सेवा कही जाय है, वैसी सेवाकी सिद्धिकेलिये शरीरसों और मण्डानादि-द्वारा द्रव्यसों सेवा (भक्ति) करनी चिहये, वा मानसिकम-किसों, अहंताममता आदि संसारकी निवृत्ति, और भगवन्माहा-क्यको ज्ञान, यह दो अवांतर फल मिलें हैं। क॰ समा॰—तसिन् प्रवणं तत्प्रवणं । तनुश्र वित्तं च तनुवित्ते तनु-वित्ताभ्यां जाता तनुवित्तजा । २ ।

> परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्। द्विरूपं तद्धि सर्वे स्यादेकं तस्माद्विरुक्षणम्। ३। अपरं, तत्र पूर्विस्मिन्वादिनो वहुधा जगुः। मायिकं सगुणं कार्ये स्वतन्त्रं चेति नैकधा। ४।

अन्वय—हि परं त्रह्म तु कृष्णः (अस्ति) सिचदानन्दकं वृहत् (अस्ति) तत् हि एकं सर्वे स्यात्, अपरं तस्मात् विरुक्षणं, तत्र पूर्वेस्मिन् वादिनः वहुधा जगुः, माथिकं सगुणं कार्ये च ख-तत्रं इति एकधा न जगुः।

भावार्थ — शास्त्रमें श्रीकृष्णकृं ही परत्रहा कहे हैं तास्ं, परत्रहा तो श्रीकृष्ण हैं, सत्चित्गणितानंद अक्षरत्रहा है, वह अक्षरत्रहा निश्चयकरकें दो प्रकारको है, एक सर्वजगत्रहप है, और
दूसरो वा जगत्रहपसों जुदो है जाको ज्ञानी विचार करें हैं, उन
दोनों रूपनमें, पहले जगत्रहप त्रहाके विपयमें वादी अर्थात् विवाद करवेवारे अनेक प्रकारसों कहें हैं, कितनेही या जगत्रक्रं
मायासों दीखतो कहें हैं, कितनेही त्रिगुणालक अर्थात् सत् रजस्
तमस् इन तीन गुणसं वन्यो है एसें कहें है, और कोई कहें हैं
कि यह जगत् ईश्वरने वनायो है अर्थात् ईश्वरको कार्य है, कितनेही कहें हैं कि प्रवाहकी तरह अनादिकालसं स्वतन्त्र ही चल्यो
आवेहे ऐसें एक प्रकारसों नहीं कहें हैं।

कठि० समास-अल्पः आनंदः आनन्दकः, सत् च चित् च आन-न्दकश्च सचिदानन्दकाः, ते सन्ति यसिन् तत् सचिदानन्दकम् । १ । ः तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्भतम्।
द्विरूपं चापि गंगावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी। ५।
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा।
मयीदामार्गविधिना तथा ब्रह्माऽपि बुद्ध्यताम्। ६।
अन्वय—तत् एव एतत्प्रकारेण भवति इति श्रुतेः मतं, च
द्विरूपं अपि गंगावत् ज्ञेयं, (एका) सा जलरूपिणी (अपरा)
माहात्म्यसंयुता मर्योदामार्गविधिना सेवतां नृणां भुक्तिमुक्तिदा
(अस्ति) तथा ब्रह्म अपि बुध्यताम्।

भावार्थ—वह अक्षरब्रह्म ही या जगत्यकारसों होय है यह वेदको मत है, और दोरूपवारों अक्षरब्रह्मभी गंगाकी तरह जा-ननों, एक गंगा जलरूप है, और दूसरी माहात्म्यसंयुक्त तीर्थ-रूप जो मर्यादामार्गकी रीतिसूं सेवनकरवेवारे मनुष्यनकूं भोग और मोक्ष देवेवारी है, ऐसेहीं अक्षरब्रह्मभी दो प्रकारको जाननो।

कितांश समास—हे रूपे यस तत् हिरूपं, । ५ । ६ । तत्रैव देवता मूर्तिर्भक्तया या दृश्यते कचित् । गंगायां च विशेषेण प्रवाहाभेदवुद्धये । ७ ।

अन्वय—तत्र एव या देवता मूर्तिः (सा) भक्ता च वि-रेषिण प्रवाहाभेद्बुद्धये कचित् गंगायां दृश्यते ।

भावार्थ—वा तीर्थरूप और जलरूप गंगामें ही जो देवता-रूप गंगाकी मूर्ति है, वह गंगा, भक्तिके उत्कर्ष हीयवेसूं और विशेषकरके जाकूं प्रवाह और मूर्तिमें अभेद बुद्धि होय वा भ-स्कूं ही कोईसमय गंगामें दीखे है।

[े] अत्र चिसडो डित्करणाज्ज्ञापकात्—अनुदात्तत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यमिति बोध्यम् । अनुवादकः

क० समा०—अमेदेन बुद्धिः अमेदबुद्धिः प्रवाहे अमेदबुद्धिर्यस सः, तसे । ७ ।

प्रत्यक्षा सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात्तया जले । विहिताच फलात्तद्धि प्रतीत्याऽपि विशिष्यते । ८ । अन्वय—सा सर्वेषां प्रत्यक्षा न, तया जले प्राकाम्यं स्यात्, हि तत्, विहितात् फलात् च प्रतीत्या अपि विशिष्यते ।

भावार्थ—वह देवमूर्ति गंगा सवनकूं प्रत्यक्ष नहीं दीखे है, वा गंगासूं ही जलमें स्नान आचमन आदि उत्तम कार्य करनो सिद्ध होय है, कारणके वह जल, शास्त्रमें कहे फलकूं देयवेसूं और महासानके विश्वाससूंभी अन्यजलकी अपेक्षा उत्तम समझो जाय है। ८।

> यथा जलं तथा सर्वे यथा शक्ता तथा वृहत्। यथा देवी तथा कृष्णस्तत्राप्येतदिहोच्यते। ९।

अन्वय—यथा जलं तथा सर्व यथा शक्ता (गङ्गा पवित्रीकर्तु) तथा बृहत् (ब्रह्म सर्व शक्तं) यथा देवी (गङ्गा) तथा कृष्णः (परब्रह्म) तत्रापि इह एतद् उच्यते ।

भावार्थ—तास्ं, जैसे संकोचिवकासी गंगाको जल है, तै-सेही यह जगत्रूप ब्रह्म भी आविभीव तिरोभाव धर्मवारो है, और जैसे पवित्रकरवेवारी सामर्थ्यरूप गंगा है, तेसें सर्वज्ञक्ति-मान् अक्षरब्रह्म है, तथा जैसे आधिदैविक देवीरूप गंगा है, वै-सेही परब्रह्म श्रीकृष्णभी आधिदैविक खरूप हैं, तामेंभी यहां इतनो और कहोो जाय है। ९।

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवासतः । देवतारूपवत्प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः । १० । अन्वय—जगत् तु त्रिविधं प्रोक्तं, ततः ब्रह्मविष्णुशिवाः दे-वतारूपवत् प्रोक्ताः, ब्रह्मणि, हरिः इत्थं मतः । भावार्थ—जगत् तो सलादि गुणनके भेदसूं तीन प्रकारको है, तासूं वा जगत्के नेता ब्रह्मा विष्णु और शिव, लोकमें उपा-सनाकरवेलायक देवता कहे हैं, और अक्षरब्रह्ममें श्रीकृष्णही सेव्य देवता माने हैं, अर्थात् ज्ञानी मुक्त जीवकूं भजवेलायक तो श्रीकृष्ण हैं।

कठि० समास—तिस्रो विधाः यस तत् । देवतारूपेण तुल्याः देव-तारूपवत् । १० ।

कामचारस्तु लोकेऽस्मिन्त्रह्मादिभ्यो न चाऽन्यथा। परमानन्दरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः। ११।

अन्वंय—अस्मिन् लोके कामचारः तु ब्रह्मादिभ्यः, (भ-वति), च अन्यथा न, स्वासिनि तु परमानन्दरूपे कृष्णे निश्चयः (भवति)।

भावार्थ—या सालिकादि तीन प्रकारके छोकमें उन २ के मक्तनकी छोकिक मनोरथ पूर्तितो ब्रह्मादि तीनो देवतानसूं ही होय है, और तरहसूं नहीं होय सके, और अपने आसाके छिये तो निख निरवधिक आनन्दरूप श्रीकृष्णमें ही सकलमनोरथपू-र्तिको समृह होय है।

कठि० समास—खस आत्मा खात्मा, तसिन्। खात्मने इत्यर्थः। अत्र 'निमित्तात्कर्मयोगे' इतिस्त्रेण 'चर्मणि द्वीपिनं हन्ती'तिवत् चतुर्ध्यर्थे सप्तमी ज्ञेया । निःशेषाणां चयः निश्चयः, सर्वकाममूलभूतानन्दप्राप्तिरि-त्यर्थः। ११।

अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम् । आत्मिन ब्रह्मरूपे हि छिद्रा च्योम्नीव चेतनाः । १२ । अन्वय—अतः तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिः विधीयतां, हि ब्रह्मरूपे आसिन, व्योम्नि छिद्रा इव, चेतनाः (सिन्त)। भावार्थ—तासों सर्ववस्तु ब्रह्मासक है, या भावसों श्रीकृ-णमें अंत:करण लगाओ, ब्रह्मांश होयवेसों ब्रह्मरूप आसामें, आकाशमें छिद्रकीतरह अनेकतरहकी युद्धि मालुम पहें हैं, अर्थात् आकाशमें छिद्र उपाधिस्ं हैं, ऐसें ही आसामें युद्धिभी औपाधिक हैं, और विविधप्रकारकी हैं, और उन्हींसों जीवको वंधन होय रह्यो है।

कठि० समास—सर्वे बहा इति वादः ब्रह्मवादः, तेन । १२ । उपाधिनारो विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वाववोधने । गंगातीरस्थितो यद्वदेवतां तत्र पश्यति । १३ । तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन्ज्ञानी प्रपश्यति ।

अन्वय-यद्वत् गंगातीरिक्षतः तत्र देवतां पश्यिति, तथा उपाधिनाशे (सित) (च) ब्रह्मासित्वाववोधने विज्ञाने (सित) ज्ञानी, खिस्मन् परंब्रह्म कृष्णं प्रपश्यित ।

भावार्थ — जैसे गंगाकेतीरपे स्थित, और प्रवाह मूर्ति आदि-गंगामें एकभाववारो गंगाको भक्त, प्रवाहरूप गंगामें ही देवता-रूप गंगाजीको दर्शन करे है, तेसेंही अविद्यारूप उपाधिके नाश भयेसूं और 'सर्व वस्तु ब्रह्मरूप हैं' एसो यथार्थ ज्ञानरूप अनुभव होयवेसूं ज्ञानीभी अपनी आसामें परब्रह्म श्रीकृष्णको दर्शन करे है।

कठि० समास—त्रह्म आत्मा यस तत् त्रह्मात्म, त्रह्मात्मनः भावः त्रह्मात्मत्वं, त्रह्मात्मत्वेन अववोधनं, तस्मिन् । १३ ।

संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा। १४। अपेक्षितजलादीनामभावात्तत्र दुःखभाक्।

अन्वय—यथा दूरसः अपेक्षितजलादीनां अभावात् तत्र दु:खभाक् (भवति), तथा यः संसारी तु (श्रीकृष्णं) भजते, सः (द्शीनाभावात्) दु:खभाक् (भवति)। भावार्थ—जैसे गंगासों दूर स्थित मनुष्य, इच्छित जल और दर्शनके न होय वेसों वहां दुखी होय है, तैसेहीं जो अ-हंताममतामें वॅथ्यो जीव कृष्णकोभी भजन करे, तो वह भगव-दर्शन न होयवेसों केवल दु:खी होय है।

कठिनांश समास—जलं आदिर्येषां तानि जलादीनि, अपेक्षितानि च तानि जलादीनि च, तेषां । १४ ।

तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः । १५। आत्मानंदसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत् ।

अन्वय—तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थः सर्वलोकतः विमुक्तः (सन्) आसानंदसमुद्रस्यं कृष्णं एव विचिन्तयेत्।

भावार्थ—तासों श्रीभगवन्मार्गमें रहवेवारो पुरुप तो अर्ह-ताममतारूप संसारस्ं अलग रहतो, निज आनंदसमुद्रमें विहार-करते श्रीकृष्णकोही सारण करे।

किंदि॰ समा॰—आ़त्मनः आनंदः आत्मानंदः, स एव समुद्रः, आ-त्मानंदसमुद्रः, तिसान् तिष्ठति सः, तम् । १५ ।

लोकार्थी चेन्हजेत्कृष्णं क्विष्टो भवति सर्वथा। १६। क्विष्टोऽपि चेन्हजेत्कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा।

अन्वय—(यः) लोकार्थी (सन्) कृष्णं चेत् भजेत् (ताई) (सः) सर्वथा क्षिष्टः भवति, क्षिष्टः अपि (जनः) चेत् कृष्णं भजेत् (तस्य) सर्वथा लोकः नश्यति।

भावार्थ—जो पुरुष, लौकिककामनानको प्रयोजन राखकें जो कदाचित् श्रीकृष्णकी सेवा करे, तो वह सवतरहस्ं क्षेत्र पावे है, और संसारस्ं दुर भयो पुरुष जो भगवद्गजन करे, तो वाको सवतरहसों अहंताममतारूप संसार दूर होय है। १६। ज्ञानाऽभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत्पूजोत्सवादिषु । १७ । मर्यादास्थस्तु गंगायां श्रीभागवततत्परः । अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः । १८ ।

अन्वय—पुष्टिमार्गी ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) पूजोत्सवादिषु तिष्टेत्, मर्यादास्थः तु ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) गङ्गायां तिष्टेत्, पुष्टिमार्गे अनुमहः नियामकः इति स्थितिः (अस्ति)।

भावार्थ-पृष्टिमार्गीय भक्त, ज्ञानके अभावमें अर्थात् अप-नेखक्ष और भगवत्खक्षको ज्ञान न होयतो, श्रीभागवतमें तत्पर रहतो, एकादशस्कंधमें कही पूजाकी रीति और पर्वनमें अनेक उत्सव जहां होते होंय वहां रहे, और मर्यादामार्गीय भक्त तो ज्ञानके अभावमें श्रीभागवतमें तत्पर रहतो श्रीगंगातटपे रहे, अनुप्रह-मार्गमें भगवानको अनुप्रहही स्थान आदिको नियमकरवेवारो है यह भगवन्मार्गकी मर्यादा है, अर्थात् जहां भगवान् अनुप्रह क-रते होंय वहां पृष्टिमार्गीय भक्त रहे।

कठि० समा०—मृग्यते अनेन इतिमार्गः पुष्टिरेव मार्गः पुष्टिमार्गः, तिसन् । पूजाश्र उत्सवाश्र पूजोत्सवाः पूजोत्सवाः आदिर्थेषां ते, तेषु । श्रीमच तद्भागवतं च श्रीभागवतं, तिसन् तत्परः श्रीमागवततत्परः । १८।

उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैवं फलिप्यति ।

ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्माञ्चिरूपितः। १९। अन्वय—उभयोः तु क्रमेण एव पूर्वोक्ता एव फिल्यितः। (यतः) भक्तिमार्गः ज्ञानाधिकः (अस्ति) तस्मात् एवं निरूपितः। भावार्थ—मर्यादामार्गीय और पृष्टिमार्गीय भक्तनकूं क्रमसूं ही पूर्वमें कही मानसी सेवाही प्राप्त होयगी, भेद इतनोही है के

मर्यादामार्गीयकूं अनुप्रहमार्गमें आयवेसूं प्राप्त होयगी, क्यों कि 'क्केशोधिकतरस्तेषां' इत्यादि वचननसों यह सिद्ध है, और अतएव भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसूं अधिक है, तासूं हीं ऐसो निरूपण कियो है।

कठि० समास-ज्ञानात् अधिकः ज्ञानाधिकः । १९ ।

भक्तयभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः। अन्यथाभावमापन्नस्तस्मात्स्थानाच्च नश्यति। २०।

अन्वय—यथा तीरखः भत्तयभावे तु दुष्टैः स्वकर्मभिः अन्वयभावं आपन्नः (सन्) तस्मात् स्थानात् नश्यति, (तथा, भक्तोऽपि नश्यतीत्यर्थः)।

भावार्थ—जैसे गंगातीरपे रहतो पुरुष, भक्ति न होय तो अपने दुष्टकर्मनसूं पाखंडीपनेकूं प्राप्त होयकें और तीर्थज्ञानरूप स्थानसूंभी नष्ट होय जाय है, तैसे भक्तभी भक्तिके अभावमें अपने दुष्कर्मनसूं वा स्थानसूं श्रष्ट होय नीच योनीनमें जन्म हे है। भक्ते: अभाव: भक्त्यभाव: । २०।

एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम्। एतद्बुध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात्। २१। । इतिश्रीवक्षमावायेविरिचता तिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्ण।

अन्वय—एवं मया गुप्तं स्वशास्त्रसर्वस्वं निरूपितं एतत् बुध्वा पुरुषः सर्वसंशयात् विमुच्येत ।

भावार्थ—या रीतिसों मैने अपने शास्त्रको गोप्य सेवारूप सिद्धान्त कह्यो, याकूं जानकें पुरुष सर्वसन्देहनसूं मुक्त होय है। २१।

। इतिश्रीसिद्धान्तमुक्तावलीवजभाषाटीका सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदकी विवृति।

पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक् । जीवदेहिकियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च । १ । वक्ष्यामि सर्वसंदेहा न भविष्यन्ति यच्छतेः ।

अन्वय—पृथक् पृथक् विशेषेण, जीवदेहिकियाभेदैः, प्रवा-हेण, च फलेन पुष्टिप्रवाहमयीदाः (अहं) वक्सामि, यच्छुतेः सर्वसंदेहा न भविष्यन्ति।

भावार्थ—पृष्टि प्रवाह और मर्यादा इन तीननके जुदे २ विशेष (धर्म) नसूं, सृष्टिकी चलती परंपरासूं, जुदे २ मिलते फलसूं और जीव देह किया इनके भेदनसूं पृष्टिमार्ग, प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्गको निरूपण (में) कहंगों, जाके अवणकरेसूं सवतरहके संदेह दूर होंयों।

कठि० समा०—पुष्टिश्च प्रवाहश्च मर्यादा च पुष्टिप्रवाहमर्यादाः, ताः । जीवश्च देहश्च क्रियाश्च जीवदेहिकयाः, तासां भेदाः, तैः । यासां श्रुतिः य म्ह्युतिः, तसाः । १।

भक्तिमार्गस्य कथनात्पुष्टिरस्तीति निश्चयः । २ । अन्वय—भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः (अस्ति) ।

भावार्थ-शाखनमें 'नायमात्मा' 'केवलेन हि भावेन'

इत्यादिवचननसूं भक्तिमार्ग जुदोही कह्योहे तासूं निश्चय होय है के भगवान्को अनुव्रह है, और ताहीसूं यहभी मालुम पढेहे के पुष्टि (अनुव्रह) मार्गभी जुदोही है। २।

'द्रौ भ्रुतसर्गा ' वित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः वेदस्य विद्यमानस्वान्मर्यादापि व्यवस्थिता । ३ ।

अन्वय—'द्वौ भूतसर्गों' इत्युक्तेः प्रवाहः अपि व्यवस्थितः (अस्ति) (किंच), वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादा अपि व्यव-स्थिता (अस्ति)।

भावार्ध—गीताजीमं श्रीकृष्णने अर्जुनस् कही है के 'या लोकमं देव और आसुरभेदसों प्राणीनकी दोतरहकी सृष्टि है' तास्ं प्रवाहमार्गभी सिद्ध है, और कमीदिकी ज्यवस्थाकरवे-वारो वेद विद्यमान है, तास्ं सिद्ध है के मर्थादामार्गभी अनादि-कालसं चलो आवे है। ३।

कश्चिदेव हि भक्तोहि 'योमद्भक्त ' इतीरणात्। सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः। ४। न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदतः। 'यदा यस्येति ' वचनान्नाहं वेदैरितीरणात्। ५।

अन्वय—'यो मद्भक्त' इति ईरणात् (किंच) सर्वत्र उत्कर्षकथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः, हि कश्चित् एव भक्तः, सर्वः न, अतः प्रवाहात् हि (पुष्टिमार्गः) भिन्नः (अस्ति) च 'यदा यस्येति' वचनात् 'नाहं वेदैः' इति ईरणात् वेदतः (अपि) भेदतः (श्वित इति शेषः)।

भावार्थ-गीताजीमें भगवान्ने 'जो मेरो भंक्त हे सो मोकूं प्रिय हैं यह कहा है तासूं, और सर्वशास्त्रनमें भक्तिको उत्कर्ष कह्यो हे तासूं, पुष्टिमार्ग है यह सिद्ध होय है, कारण के कोईक ही भक्त होय है, सव नहीं होंय हैं, तासूंभी पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्गसूं भिन्न है यह निश्चय है, । तथा 'जव भगवान् अनुग्रह करें हैं तब भक्त, लोकमार्ग और वेदमार्गमें वुद्धि नहीं लगावे हैं'या भागवतके वचनसूं तथा 'मेरो ऐसो दर्शन वेदादिसों नही होय हैं या भगवान्के वचनसूंभी यह निश्चय होय है के पुष्टिमार्ग, मर्यादामार्गसोंभी भिन्नतया स्थित है, अ-र्थात् भिन्न है।

कठि० समास-उत्कर्षस कथनं उत्कर्थकथनं, तसात्, भेदं आ-थ्रित्य स्थितः इति मेदात् । ४-५ ।

। कोईके पूर्वपक्षको उत्तर कहें हैं।

मार्गेकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ। न तद्युक्तं सूत्रतो हि भिन्नो युक्तया हि वैदिकः। ६। अन्वय-मार्गेंकले अन्त्यौ अपि तन् (च) भक्तागमौ मतौ इति चेत्, तत् युक्तं न, हि सूत्रतः युक्त्या वैदिकः (मार्गः) हिं भिन्न: (अस्ति)।

भावार्थ-तीनोनकूं एकही मार्ग मानो अर्थात् प्रवाह और मर्यादासार्ग दोनो भक्तिमार्गके अंग है, तथा भक्तिके साधन शास्त्र हैं, एसें कहो तो भी युक्त नहीं, कारणके मुख्यको फलही जामें फल मानी जाय, ताकूं अंग कहें हैं, परन्तु यहां मर्यादाको फल 'तन्निष्ठस्य मोंशोपदेतात्ं सा स्त्रस्ं अध्येक्य कंहो है, और भक्तिको फल 'तत्संस्थस्यामृतुत्वोपदेशात्' या शांहिल्य-

सूत्रस्ं आनंद प्राप्ति कही है, तास्ं फल जुदे २ होयवेस्ं दोनो मार्ग जुदे हैं, और प्रवाहको तो संसार फल है तास्ं वहभी भक्तिमार्गको अंग नहीं होय सकै है।

कठि० समास-एकस भावः एकत्वं मार्गाणां एकत्वं मार्गकत्वम् ।६।

जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यताश्चतेः। यथा तद्वत्पुष्टिमार्गे द्वयोरिप निषेधतः। ७। प्रमाणभेदाञ्चिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः।

अन्वय—यथा पुष्टिमार्गे श्रुतेः जीवदेहकृतीनां भिन्नतं, तद्वत् नित्यता च (सिद्धाति) हि द्वयोः अपि निपेधतः, (किंच) प्रमाणभेदात् पुष्टिमार्गः भिन्नः निरूपितः।

भावार्थ—जैसे पुष्टिमार्गमें श्रुतिके प्रमाणसूं पुष्टिमार्गीय जीव देह और उनकी किया जुदों हैं, तैसें उनकी तिखताभी 'ध्रुवा सोऽस्य कीरयः' श्रुतिसों मानी है, याही कारणसूं 'स जहाति मितंं छोके वेदे च परिनिष्ठितां' इखादि प्रमाणनसूं प्रवाह और मर्यादा दोनों मार्गनमें पुष्टिफल (भगवत्प्राप्ति) के मिलवेको निपेध कियो हे तासूं, और प्रवाहमर्यादामार्गनकूं प्रविपादनकरनवारे शास्त्रनके भेदसूंभी पुष्टिमार्ग, दोनोनसूं भिन्नहीं कहो गयो है।

कठि० समास—जीवाश्च देहाश्च कृतयश्च जीवदेहकृतयः, तासाम् ।०। सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगिकियायुतम् । ८ । इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान्हरिः । वचसा वेदमार्ग हि पुष्टिं कायेन निश्चयः । ९ । अन्वय—स्वरूपांगिकियायुतं सर्गभेदं प्रवह्न्यांमि, हरिः इ- च्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान्, वचसा, वेदमार्ग हि (सृष्ट-वान्) कायेन पुष्टिं (सृष्टवान्) (इति) निश्चयः (अस्ति)।

भावार्थ—जीवदेह और कियान सहित तीनोमार्गनके सृष्टि-भेदकुं कहूं हूं, 'वहुस्यां प्रजायेय' 'न तन्न रथाः' 'विद्धि मा-यामनोमयं' आदि श्रुतिनस्ं माछम पडे है के श्रीहरिने इच्छा-द्वारा मनस्ं प्रवाहमार्गकी सृष्टि करी, और 'स भूरिति व्याह-रन्भूमिमसृजत' 'वेदशव्देभ्य एवादों पृथक्संस्थाश्च निर्ममे' आदि वचननस्ं ज्ञात होय है के वाणीसं मर्यादामार्ग पैदा कियो तथा 'द्वेधाऽपातयत्' 'स नैव रेमे' 'स हैतावानास' आदि वचननसं जान्यो जाय है के खरूपसं पृष्टिमार्गकी सृष्टि निजर-मणके छिये करी है, ऐसो निश्चय है।

कठि० समास — खरूपं च अंगं च क्रियाश्च खरूपांगिकयाः, ताभि-र्शुतः, तम् । ८-९ ।

मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च। कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकता। १०। अन्वय—लोके मूलेच्छातः फलं (भवति), च वैदिके अपि वेदोक्तं (फलं) तु पुष्टी कायेन फलं, (एवं) भिन्नेच्छातः अपि एकता न।

भावार्थ—'शुक्रकृष्णे गतीहोते' इत्यादि वचननसों मालुम पढ़े है, के प्रवाहमार्गमें 'सृष्टि हमेशां चलती रहें' या इच्छासों लौकिक फल मिलें हैं, और मर्यादामार्गमें अक्षरमें मिलजानो यह वेदोक्त फल मिले हैं, किन्तु 'नायं सुखापो' आदि वाक्यनस्ं पुष्टिमार्गमें निजस्वरूपस्ं फल मिले है, तास्ं फलदेयवेकी अलग २ इच्छा होयवेस्ंभी पुष्टि और अन्य मार्गनको ऐक्य नहीं है।१०। 'तानहं द्विपतो ' वाक्याद्मिन्ना जीवाः प्रवाहिणः । अत एवेतरा भिन्ना सान्ता मोक्षप्रवेशतः । ११ । अन्वय—'तानहं द्विपतो' वाक्यात् प्रवाहिणः जीवाः

भिन्नाः (सन्ति), अत एव भिन्नो इतरो, मोक्ष्प्रवेदातः सान्ती (स्तः)।

भावार्थ—'में जगत्रूप ब्रह्मसूं द्वेपकरनवारे उन आसुर जीवनकूं वारंवार आसुरयोनिनमेंही डारूं हूं' या श्रीकृष्णके वाक्यस्ं प्रवाहमार्गीय जीव भिन्न हें ऐसो निश्चय होय
है, ताहीसूं प्रवाहीनसूं जुदे मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय
जीव, अक्षरेक्य और हरिप्राप्तिके होयवेसूं अंत वारे हें, अर्थीन्
इन दोनोनको जीवभाव भिट जाय है, और प्रवाहीनकूं सदा
संसारचक्रमेंही रहनो पडे हैं।

कठिन समास—मोक्षश्र प्रवेशश्र मोक्षप्रवेशो, मोक्षप्रवेशाम्यां इति मोक्षप्रवेशतः । अन्तेन सहितौ सान्तौ । ११ ।

ः तसाजीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः । भगवद्भपसेवार्थे तत्सृष्टिनीन्यथा भवेत् । १२ ।

अन्वय—तसात् पृष्टिमार्ग जीवाः भिन्ना एव संशयः न (अस्ति), तत्सृष्टिः भगवद्रपसेवार्थ (अस्ति), अन्यथा न भवेत्। भावार्थ—पूर्वमें तीनोमार्ग जुटे र फहे हैं तास् पृष्टिमार्गमें जीव दोनों मार्गनके जीवनस् जुटेही हैं। यामें अणुमात्रभी सन्देहः नहीं हैं, उनपृष्टिमार्गायजीवनकी सृष्टि भगवानकी सहपसेवाके लिये हैं, अन्यके लिये उनकी सृष्टि होय यह संभवी नहीं है। काठि० समास—भगवतः स्प्रं भगवद्र्ष, तस सेवार्गमगवद्रपसेवा, तसे इति मगवद्र्षसेवार्थमां दिश्वार स्थानिकार्यद्रपसेवा, तसे इति मगवद्रपसेवार्थमां दिश्वार स्थानिकार्यद्रपसेवा, स्वरूपेंणावतारेण छिंगेन च गुणेन चं। तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा। १३। तथापि यावता कार्यं तावत्तस्य करोति हि।

अन्यय—स्वरूपेण अवतारेण छिंगेन च गुणेन च (पृष्टि-जीवानां) खरूपे वा देहे वा तिकयासु तारतम्यं न (अस्ति), तथापि यावता कार्य तावत् तस्य करोति हि।

भावार्थ-सिंचनन्दस्तरूपकरकें, अवतारकरकें, ध्वज वज्र आदि चिहनकरकें, और ऐश्वर्यादि गुणनकरकेंभी पुष्टिजीवनके सिंहपमें देहमें अथवा उनकी कियामें भगवानकी अपेक्षा यद्यपि भेट नहीं हैं, तथापि जितने भेटसूं रमणरूप कार्य सिद्ध होय उतनो तो फरक, आपमें और भक्तनमें भगवान राखें हैं, यह वात निश्चय है।

कठिनांशको समास—तेपां कियाः तिक्रयाः, तासु । तरतमस्य भावः तारतम्यम् । १२ ।

ते हि द्विधा गुद्धमिश्रभेदान्मिश्रास्त्रिधा पुनः । १४ । प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये । पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः । १५ । मर्यादया गुणज्ञास्ते गुद्धाः प्रेम्णाऽतिदुर्लभाः । अन्वय—ते हि गुद्धमिश्रभेदात् द्विधा, पुनः भगवत्कार्यसिद्धये मिश्राः प्रवाहादिविभेदेन त्रिधा (सन्ति), पुष्टा विमिश्राः सर्वज्ञाः (भवन्ति), प्रवाहेण विमिश्राः क्रियारताः (भवन्ति) मर्याद्या (विमिश्राः) गुणज्ञाः (भवन्ति) (किंच) प्रेम्णा

भावार्थ-ये पुष्टिमार्गीय जीव शुद्ध और मिश्र भेदसों हो

शुद्धाः ते अति दुर्लभाः (भवन्ति)।

प्रकारके हैं, फिर उनमंभी भगवानके रमणरूपकार्यकी सिद्धिकें लिये मिश्रजीव, प्रवाहादि तीनभेदकरकें तीनप्रकारके हैं, अर्थात् प्रवाहमिश्र मर्यादामिश्र और पृष्टिमिश्र ऐसें तीन प्रकारके हैं, जो पृष्टिजीव थोडे अनुप्रहसूं और मिश्र होंय हैं, अर्थात् मिले हें वे सर्वज्ञ होंय हैं, जो प्रवाहसूं मिश्र होंय हैं वे कर्ममें प्रीतिवारे होंय हैं, जोमर्यादासूं मिश्र होंय हैं वे भगवदुणादिके जानवेवारे होंय हैं, और जो पृष्टिजीव प्रेमसूं शुद्ध होंयहें वे तो अतिदुर्लम है, इन्हीं चारभेदनकूं प्रन्थान्तरमें पृष्टिपुष्टभक्त प्रवाहपुष्टभक्त मर्यादापुष्टभक्त और शुद्धपुष्टभक्त कहे हैं।

कठिनांशको समास—गुद्धाश्र मिश्राश्च गुद्धमिश्राः, तेषां मेदः त-सात् । प्रवाहः आदिः थेषां तेः प्रवाहादयः, तेषां विभेदः, तेन । १४-१५ ।

> एवं सर्गस्तु तेपां हि फलं त्वत्र निरूप्यते । १६ । भगवानेव हि फलं स यथाऽऽविभवेद्धवि । गुणस्वरूपभेदेन तथा तेपां फलं भवेत् । १७ ।

अन्वय—एवं तेषां सर्गः तु (निरूपितं), अत्र फलं तु नि-रूप्यते, हि भगवान् एव फलं, सः भुविः गुणस्करूपभेदेन यथा आविभेनेत्, तथा तेषां फलं भनेत्।

भावार्थ—या प्रकारसं उनपृष्टिजीवनकी उत्पत्ति तो कही, अव यहां उनके फलकोभी निरूपण करें हैं, निश्चयकरकें भगवान् ही फल हैं, वे श्रीकृष्ण, भक्तके हृदयमें अथवा वृन्दावनादिखलमें ऐश्वर्यादि गुण और नृसिंहवामनादिखलपके भेदसं जारीतिकरकें प्रगट होंगें, ताहीरीतिसों उनके फल होंग हैं।

कठि० समास—गुणाश्र सस्पाणि च गुणसस्पाणि, तेषाँ भेदः तेन 1 १६-९७। आसक्तौ भगवानेव शापं दापयित कचित्। अहंकारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि। १८।

अन्त्रय-आसक्ती अथवा अहंकारे, छोके तन्मार्गस्थापनाय क्रचित् भगवान् एव शापं दापयति ।

भावार्थ--नलक्ष्वरादिकीतरह यदि लौकिकमें आसक्ति होय अथवा चित्रकेतुप्रभृतिकीतरह जो अहंकार होय तो अपने भक्त-नक् अपने २ मर्यादाआदिमार्गनमें राखवेके लिये कोईसमय भगवानही कोईकेद्वारा उन्हे शाप दिवांचे हैं।

कठि० समास-तेयां मार्गाः तन्मार्गाः, तेषु स्थापनं तन्मार्गस्थापनं तसी । १८ ।

न ते पापण्डतां चान्ति नच रोगाद्यपद्रवाः।
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे। १९।

अन्वय—ते पापण्डतां न यान्ति, च (तेपां) रोगाद्युपद्रवाः न (भवन्ति), प्रायेण (ते) महानुभावाः (भवन्ति), (तेपां) शास्त्रं शुद्धलहेतवे (भवति)।

भावार्थ—जिनकों भगवान् शापिद्वावें हैं वे भक्त, फिर लोकवेदभक्तिमार्गसूं विरुद्ध नहीं होंय हैं, तथा उनके रोगादि उपद्रवभी नहीं होंय हैं, वहोतकरकें वे महानुभाव होंय जाँय हैं, उनकूं जो भगवान् शापरूप शिक्षा दें हैं सो केवल उनको मिश्र-भाव मिटायकें शुद्धप्रेमी करवेकेलियेही समझनों।

कठि० समास—ग्रुदसमानः शुद्धत्वं, शुद्धत्वं हेतुः शुद्धत्वहेतुः, तसे । १९ ।

भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि । अन्वय—भगवत्तारतम्येन (ते) हि तारतम्यं भजन्ति। भावार्थ—'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं' या श्रुतिसों मालुम पढ़े है के भगवान् अनेकरूपवारेभी हैं तासों भगवान् जेसे जेसे खरूपभेदको खीकार करे हैं, उनके भक्तभी वैसे २ भावके तारतम्यकों प्रहण करें हैं, याहीसों वृत्रासुरको भाव संकर्पणमें भयो और गजेन्द्रको (इन्दुयुक्तको) निर्गुण परत्रहामें भाव भयो।

वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्यात्तेषु नान्यथा । २० । वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः ।

अन्वय—तेपु वैदिकलं (च) होकिकतं कापट्यात् (अस्ति) अन्यथा न (असि) हि वैष्णवत्वं सहजं, अन्यत्र ततः विपर्ययः (अस्ति)।

भावार्थ—' कुर्याद्विद्वाँस्तथाऽसक्तश्चिकीपुर्लोकसंग्रहम् ' इत्यादि वाक्यनके अनुसार उन भक्तनमें वैदिक कर्मनको अनु-ष्ठान करनो, तथा छौकिकन्यवहार चलानो, यह दोनो वात कपटसों अर्थात् छोकसंग्रहके लिये होंय हैं, कारण के उनमें स्वभावसोंही भगवद्रक्तपनो होय है, परन्तु मर्यादा जीव और छौकिक जीवनमें, यासूं विरुद्ध अर्थात् वैष्णवपनों कपटसों और वैदिकपनो स्वभावसूं तथा वैष्णवपनो कपटसूं और न्यवहारासक्ति स्वभावसों होय है। २०।

संवंधिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे । २१ । चर्पणीशन्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु । क्षणात्सर्वत्वमायांति रुचिस्तेषां न कुत्रचित् । २२ । तेषां क्रियाऽनुसारेण सर्वत्र शकलं फलम् ।

अन्वय-ये संवंधिनः जीवाः तथा (ये) प्रवाहस्थाः अपरे (जीवाः) ते तु सर्वे चर्पणीशब्दवाच्याः, ते सर्वे सर्ववर्तसु क्षणात सर्वेत्वं आयान्ति, तेषां रुचिः कुत्रचित् न (भवति), सर्वत्र तेषां क्रियाऽनुसारेण शुक्छं फछं (भवति)।

भावार्थ—जो तीनो मार्गनसूं संबंध राखवेबारे जीव हैं वे, और जो केवल प्रवाहमार्गमें आसक्तिवारे अन्य जीव हैं वे सब तौ, चर्षणी (भ्रान्त) शब्दसूं कहवे लायक हैं, वे सर्व सब-मार्गनमें क्षणमात्रमें सवमार्गनकेसे होय जांय हैं, किन्तु उनकी रुचि कोईभी मार्गमें दृढ नहीं होय है, सबमार्गनमें उन्हें, उनके कर्मनके लायक खंड २ फल मिले है।

किति समास—संवंधः अस्ति येषां ते । प्रवाहे तिष्ठन्ति ते । वक्तुं योग्याः वाच्याः चर्षणीशब्देन वाच्याः, चर्षणीशब्दवाच्याः। सर्वाणि च तानि वर्त्मानिच सर्ववर्त्मानि, तेषु । २१–२२ ।

प्रवाहस्थान्प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगिक्रयायुतान् । २३ । जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे 'प्रवृत्तिं चेति' वर्णिताः । तेच द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः । २४ ।

अन्वय—खरूपांगिकयायुतान् प्रवाहस्थान् (अहं) प्रवक्ष्यामि, 'प्रवृत्तिं च' इति वर्णिताः ते सर्वे जीवा हि आसुराः (सिन्त), च अज्ञदुर्ज्ञविभेदतः द्विघा हि प्रकीर्यन्ते।

भावार्थ—खंरूप देह कियासूं युक्त प्रवाहमागींय जीवनकूं में कहूंगो, 'प्रवृत्तिं च निवृत्तिंच जना न विदुरासुरा' इत्यादि स्रोकनसों गीताजीमें जिनको वर्णन भगवान्ने कियो है वे सब आसुर (प्रवाही) जीव हैं, और वे जीव अज्ञ और दुई इन दो भेदनसों दो प्रकारके कहे हैं यह निश्चय है।

कठि० समास—अज्ञाश्च दुर्जाश्च अज्ञदुर्जाः, अज्ञदुर्जाणांविमेदः, तसात् । २३–२४ ।

दुर्ज्ञास्ते भगवत्त्रोक्ता ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः । प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तुर्न युज्यते । २५ । सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः ।

। इतिश्री वह्नभाचार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः सम्पूर्णः । अन्वय—(ये) भगवत्त्रोक्ताः ते हि दुर्ज्ञाः, ये पुनः तान् अनु, ते अज्ञाः, पुष्टिस्थः प्रवाहे समागत्य अपि तैः (सह) न युज्यते, सः अपि तैः (न युज्यते), यतः कर्मणा तत्कुले जातः (अस्ति)।

भावार्थ—जो गीतामें भगवान्ते कहे हैं वे जीव दुई (दुएज्ञानवारे) हैं, और जो उन आधुरनको अनुकरण करें हैं वे अज्ञ
कहे जाँय हैं, यद्यपि अज्ञ आधुरजीव, आधुर नहीं हैं, तथापि
तत्कुलमें प्रसृति होयवेस्ं अथवा उनको अनुकरणकरवेस्ं वे
आधुर कहे जाँय हैं, इन जीवनकी मुक्ति, केतो सत्संगादिसों
भिक्तद्वारा होय है, अथवा तो संरम्भ भय द्वेप आदि असाधनसाधनद्वारा भगवदनुप्रहसों होय है, यह वात 'मन्येऽसुरानभागवताँक्वयधीशे' आदि वचननसों मालुम पडे है, पृष्टिजीव
प्रवाहमार्गमें आयकेंभी उनके साथ मिलें नहीं हैं, और मर्यादामार्गायभी आधुरकुलमें आयके उनके धर्मनस्ं मिले नहीं है,
कारणके कर्मसों उनके कुलमें जन्म भयो है, सोही श्रीगीताजीमें
कही है के 'पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते'।

क० समा०,---न जानन्ति ते-अज्ञाः । दुष्टं ज्ञानं येषां ते दुर्जाः ।२५।

इतिश्री पुष्टिप्रवाहमर्यादावजभाषा सम्पूर्णाः

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

सिद्धान्तरहस्यकी टीका।

श्रावणस्याऽमले पक्ष एकादश्यां महानिशि । साक्षाद्मगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते । १ ।

अन्वय-शावणस्य अमले पक्षे एकादृश्यां महानिशि भग-वता साक्षात् (यत्) प्रोक्तं तद् अक्षरशः उच्यते ।

भावार्थ-सावनके ग्रुङ्गपक्षमें और एकादशीकी अर्धरात्रिमें श्रीपुरुपोत्तमभगवान्ने जो प्रत्यक्ष कह्यो सो अक्षर २ में कहूंहूं॥१॥

> ब्रह्मसंवंधकरणात् सर्वेपां देहजीवयोः। सर्वदोपनिवृत्तिर्हि दोपाः पंचविधाः स्मृताः। २।

अन्वय- नह्यसंबंधकरणात् सर्वेपां देहजीवयोः सर्वदोपनि-वृत्तिः हि (भवति), दोपाः पंचिवधाः स्मृताः।

भावार्थ—आत्मासहित निज सर्व पदार्थनको मगवानकूं निवेदन करवेसूं सब जीवनके देह और छिंगशरीरयुक्त जीव सं-वंधी सब दोपनकी निवृत्ति होय है, अर्थात् वे खरूपसूं रहेंभी हैं तोभी सेवामें प्रतिवंध नहीं करें हैं, वे दोष, पांच प्रकारके हैं। जैसें—

कठि० समास—श्रह्मणासह संवंधः ब्रह्मसंवंधः, तस्य करणं तस्रात्। पंच विधाः येषां ते ॥ २ ॥

> सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः । संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मंतव्याः कथंचन । ३ ।

अन्त्रय—छोकवेट्निक्षिपतोः सहजाः देशकालोत्थाः संयो-गजाः च स्पर्शजाः कथंचन (हरिसेवायां प्रतिवन्धकाः) न मन्तव्याः।

भावार्थ-लोक और वेदमें कहे, अहंताममतादिस्प सहज, अंगवंगादि दुर्देशमें जन्मादि भयेसों देशोत्य, कलियुगदुर्मुहूर्तादिमें जन्म होयवेसों कालोत्य, मनके संयोगसों भये मानसिक दुष्कि-यास्प संयोगज, तथा स्पर्शजदोप, निवेदनके अनंतर सेवामें प्रति-वंधक कभी न मानने चहियें।

कठिनांश समास—सहजाताः सहजाः । देशकालाम्यां उत्याः देश-कालोत्याः । ३ ।

अन्यथा सर्वदोपाणां न निवृत्तिः कथंचन । असमपितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत् । ४ । अन्वय-अन्यथा सर्वदोपाणां निवृत्तिः कथंचन न (भवति),

तस्मात् असमार्पेतवस्तूनां वर्जनं आचरेत्।

भावार्थ-भगवित्रवेदन किये विना पूर्वोक्त दोपनकी निवृत्ति कोई तरहसूंभी नहीं होय है, तासूं दोपनिवृति होयवेकेलिये भगवानके अनिवेदित पदार्थनकूं अपने उपयोगमें न ले।

कठि० समास-असमर्पितानि च तानि वस्त्नि च असमर्पितवस्त्नि तेपाम् । ४।

> निवेदिभिः समप्येंव सर्वे कुर्यादिति स्थितिः । न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणम् । ५ । तसादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्णम् ।

अन्वय—(भक्तः) समर्प्य एव निवेदिभिः (पदार्थेः) सर्वे कुर्यात् इति स्थितिः (अस्ति), देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणं न मतं। तस्मात् सर्वकार्ये आदौ सर्ववस्तुसमर्पणं (कर्तव्यं)।

े भावार्थ—तासों भगवद्गक्त समर्पण करकें और निवेदित पदार्थनसूंही सब कार्य करें यह पुष्टिमार्गकी मर्यादा है, देवदेव श्रीभगवानकूं अर्थभुक्त समर्पण संमत नहीं है, तासूं सर्वकार्यकी आदिमें समयवस्तुकोही श्रीहरिकूं अर्पण करें (अर्द्धभुक्तको नहीं),

कठि० समास—निवेदनं निवेदः, निवेदः अस्ति येषां ते निवेदिनः तेः । सामि मुक्तं सामिमुक्तम् । सर्वे च तत् कार्ये च सर्वकार्यं, तसिन् ।५।

दत्ताऽपहारवचनं तथा च सकलं हरेः। ६। न ब्राह्ममिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।

अन्त्रय—तथा च हरे: सकलं न प्राह्यं इति दत्तापहारवचनं (तत्) वाक्यं भित्रमार्गपरं मतम्।

भावार्थ--और तेसंही भगवानकी निवेदितवस्तु अपने उप-योगमें न लानी इलादि जो 'अपि दीपावलोकं मे नोपयुंच्यं निवे-दितं' एकादशके वाक्य हैं वे वाक्य भक्तिमार्गसों जुदे मार्गके लिये हैं।

कठि० समास—दत्तस्र अपहारः दत्तापहारः, दत्तापहारः न कार्य इति वचनं दत्तापहारवचनं । ६ ।

> सेवकानां यथा होके व्यवहारः प्रसिद्धाति । ७ । तथा कार्यं समप्येंव सर्वेषां ब्रह्मता ततः । गंगात्वं सर्वदोपाणं गुणदोषादिवर्णना । ८ । गंगात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि ।

। इतिश्रीवह्रभाचार्थेविरचितं सिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ।

अन्त्रय—यथा छोके सेनकानां न्यनहारः प्रसिद्धयति, तथा समर्प्य एव सर्वे कार्ये ततः सर्वेषां त्रह्मता स्थात् । सर्वदोषाणां गंगालं, च गुणदोपादिवर्णना गंगात्वेन एव निरूप्या स्यात्, हि तद्वत् अत्र अपि ।

भावार्थ—जैसे लोकमं 'सव कार्य खामीको निवेदनकरकेंहीं करने' ये सेवकनको व्यवहार प्रसिद्ध है, तैसेही हरिभक्तनकोंभी लौकिक वैदिक सर्व कार्य श्रीहरिकों निवेदन करकेंहीं करने, ऐसें करवेसों कितनेक कालमें सवनकों निदोंपपनो और समभाव प्राप्त होय है, जैसें अन्यत्र वहते जलके, मिलनता अपवित्रता आदि दोपनकों गंगामें मिलवेसों गंगापनो प्राप्त होय है और उनकी गुणदोपआदिकी कथा, जैसे गंगारूपसों वर्णन करी जाय है, ऐसेंहीं आस्तिवेदनरूप शरणागतिके अनन्तर जीवके गुणदो-पादि, ब्रह्ममें मिलवेसों ब्रह्मरूप होय जाँय हैं।

कठि० समास--गुणदोषाः आदिः येषां तानि गुणदोषादीनि, तेषां वर्णना गुणदोषादिवर्णना । ७-८ ।

। इतिश्रीसिद्धान्तरहस्यव्रजभापा सम्पूर्णा ।



॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

नवरतकी टीका।



चिन्ता काऽपि न कार्या निवेदितात्मभिः कदाऽपीति । भगवानपि पुष्टिस्यो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्। १।

अन्वय—निवेदितासिभः कदा अपि का अपि चिन्ता न कार्या, च भगवान् अपि पुष्टिस्थः इति सौकिकीं गतिं न करिष्यति।

भावार्थ—जिनने आसासहित सर्व आसीयवस्तूनको भग-वान्क्रं अर्पण किये है, उन्हे कभीभी कोईतरहकीभी चिन्ता न करनी चहिये, क्योंके भगवान्भी अनुप्रहमें स्थित हैं, तासों अन्य प्रवाहादि छोककीसी गति नहीं करेंगे । १।

> निवेदनं तु स्पर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः। सर्वेश्वरश्च सर्वीत्मा निजेच्छातः करिष्यति।२।

अन्वंय—तादृशैः जनैः निवेद्नं तु सर्वथा स्पर्तव्यं, सर्वेश्वरः च सर्वात्मा (भगवान्) निजेच्छातः करिष्यति ।

भावार्थ—उत्तम सेवातत्पर भक्तनके संग निवेदनको स्मरण तो अवश्य करनो, सर्वेश्वर और सवनके आत्मारूप भगवान, अपनी इच्छांसों अथवा अपने खीकृत भक्तनकी इच्छासों अपने भक्तनके छौकिक वैदिक सवकार्यनकों सिद्ध करेंगे।

कठि० समास—निजाचासौ इच्छा च निजेच्छा, तसाः, अथवा निजानां इच्छा निजेच्छा, तसाः । २ । सर्वेषां प्रभुसंवंघो न प्रत्येकमिति स्थितिः। अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपिचेत्। ३।

अन्वय—सर्वेषां प्रभुसंवंधः, प्रत्येकं न इति स्थितिः, अतः अन्यविनियोगे अपि का चिन्ता, चेन् स्वस्य सः अपि (का-चिन्ता)।

भावार्थ-आसासिहत आसीय समप्र पदार्थनकूं श्रीहरिको संबंध समानही है अलग २ नहीं है. तासूं आसीयवस्तुनको अपनें, और अपनो आसीयवस्तुनमें, विनियोग होय तोभी कहा चिन्ता करनी अर्थात् कोई तरहकी चिन्ता नहीं है। ३।

अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम् । यैः कृष्णसात्कृतप्राणेस्तेषां का परिदेवना । ४ ।

अन्वय--कृष्णसात्कृतप्राणेः यैः अज्ञानान् अथवा ज्ञानान् आसनिवेदनं कृतं तेपां का परिदेवना ।

भावार्थ — श्रीहरिके, अधीन किये हें प्राण जिननें ऐसे, जिन भक्तनें आसनिवेदन कियो है, उनकूं कौनसी चिन्ता है अर्थान् उन्हें कोई तरहकी चिन्ता नहीं है।

कठि॰ समास—कार्त्स्येन कृष्णाय प्रतिपादिताः इति, कृष्णसारकृताः प्राणाः यैः ते, तैः । ४ ।

तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुपोत्तमे । विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः।५१ अन्वय—निवेदने, श्रीपुरुपोत्तमे चिन्ता त्याज्याः, तथा विनियोगे अपि सा त्याज्या हि हरिः स्वतः समर्थः।

भावार्थ-'मेरो निवेदन श्रीहरिने स्वीकार कियो के नहीं' ऐसें श्रीपुरुषोत्तममेंभी चिन्ताको परिस्राग करनो तथा कदाचित् होिकिककार्यादिमें दूसरेको आश्रय छेत्रेसों अन्यको विनियोग होय होभी चिन्ताको त्याग करनों क्योंके श्रीहरि जीवके साधनकी अपेश्रा न राखकें स्वयं समर्थ हैं।

> लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न कैरिप्यति । पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात्साक्षिणो भवताऽखिलाः । ६।

अन्त्रय—यस्मात् (जीतः) पुष्टिमार्गिश्वतः (तस्मान्), हरि: छोके तथा वेदे स्वास्थ्यं तु न करिप्यति, (तस्मात्) (छोक-वेदकर्मसु) अखिलाः साक्षिणः भवत ।

भावार्थ—जासों जीव अनुप्रहमार्गमें स्थित है तासों श्रीहरि लोक और वेदमें आसक्ति न करॉवेंगे, तासों लोकवेदके कार्य साक्षिमात्र रहकें करने चिहवें। ६।

> सेवाकृतिर्गुरोराज्ञाऽवाधनं वा हरीच्छया। अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्। ७।

अन्वय—गुरोः आज्ञाऽवायनं (यथास्यात्तथा) सेवाकृतिः, वा हरीच्छया (सेवाकृतिः), अतः सेवापरं चित्तं विधाय मुखं स्थीयताम् ।

भावार्थ-गुरूकी आज्ञानुसार सेवा करनो अथवा सामग्री-आदिके विषयमें जो प्रमुकी विशेष इच्छा होय तो प्रभुइच्छानु-सारही करनो, ऐसें गुरूकी आज्ञाके अवायमें वा वायमें प्रभुसेवामें चित्तकृं तत्पर करकें सुखसुं रहनो ।

कठि० समा०—आज्ञायाः अवाधनं आज्ञावाधनं । हरेः इच्छा हरीच्छा तया । सेवायां परं सेवापरं । ७ ।

१. अन्तणिजन्तमिदं रूपम् अनु॰ पो. ४

चित्तोद्वेगं विधायाऽपि हरिर्यद्यत्करिष्यति । तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्वतं त्यजेत् । ८ ।

अन्वय-चित्तोद्वेगं विधाय अपि हरिः यत् यत् करिष्यति, (तत्-तत्) तस्य तथा एव छीछा इति मला चिन्तां द्वतं सजेत्।

भावार्थ—मनमें उद्देग करकेंभी 'श्रीहरि जो जो करें सो सो सव उनकी वैसीही लीला (क्रीडा) है' यह मानकें चिन्ताको जल्दी परित्याग करनो । ८।

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम। वदिसरेव सततं स्थेयमित्येव मे मितः। ९।

अन्त्रय-तस्मात् सर्वात्मना नित्यं मम श्रीकृष्णः शरणं (इति) सततं वद्द्रिः एव स्थेयं इति एव मे मितः।

भावार्थ--तासों 'सवतरहसों सर्वदा मेरे श्रीकृष्णही रक्षा करवेवारे हैं' ऐसें सदा कहतेही रहनों येही मेरी मति है।। ९॥

। इति श्रीनवरत्नत्रजभापा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

अंतःकरणप्रबोधकी विवृति।

अंतःकरण मद्वाक्यं सांवधानतया शृणु । कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोपवर्जितम् । १ ।

अन्वय—हे अंत:करण मद्राक्यं सावधानतया ग्रृणु, कृष्णात् परं वस्तुतः दोपवर्जितं दैवं न अस्ति ।

भावार्थ—हे अंत:करण! मेरे वाक्यकूं तू सावधान होयकें सुन, कृष्णसूं दूसरो वास्तवमें दोपरहित देवता नहीं है।

कठि० समास—अवघानेन सहितं साऽवधानं, तस्य भावः सावधानता, तया । १।

चाण्डाली चेद्राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता। कदाचिदपमाने वा मूलतः का क्षतिर्भवेत्। २।

अन्त्रय-चाण्डाळी चेत् राजपत्नी जाता, च राज्ञा मानिता कदाचित् अपमाने (सित) वा मूळतः का क्षतिः भवेत्।

भावार्थ—चाण्डाली जो राजाकी रानी होय, और राजाने दूसरी रानीन करतें वाकूं अधिक मानी होय, और फिर कोई-समय वाहीके अपराधसूं वाको अपमान भयो होय, तो राजप-लीपनेमें कहा हानि भई? अर्थात् कछ नही, ऐसेहीं हे अंत:क-रण! कदाचित् प्रमु, फल देयवेमें विलंबभी करें तथापि अंगीकारमें कोईतरहकी हानि नहीं है, तासूं चिन्ता नहीं करनी। र।

समर्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः । का ममाऽधमता भाव्या पश्चात्तापोयतो भवेत् ॥३॥

अन्वय-अहं समर्पणात् पूर्वे किं सदा उत्तमः स्थितः ? मम अधमता का भाव्या ? यतः पश्चात्तापः भवेत् ।

भावार्ध—में, समर्पणके पूर्वमें कहा सदा उत्तमही हो ? तासूं फलिवलंबमेभी मेरी हलकावट कहा विचारनी, जासूं पश्चात्ताप होय, अर्थात् फलिवलंबकी दशामेभी 'में पहलेसूं तो अच्छोहं' यों विचारके अपनो हलकोपन न विचारनो और पश्चात्तापभी न करनो। ३।

सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति । आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत् । ४।

अन्वय — विष्णुः (श्रीहरिः) सत्यसंकरपतः अन्यथा तु न करिष्यति, (तस्मात्) सततं आज्ञा एव कार्या, अन्यथा स्वामि-द्रोहः भवेत्।

भावार्थ—सर्वत्रव्यापक श्रीहरि सांचेविचारवारे हैं, तासूं फलदेयवेके विषयमें औरतरहसूं तो नहीं करेंगे, तासूं सर्वदा प्रभुकी आज्ञाके अनुसारही सेवा करनी वैसे नहीं करवेसूं स्वामीको द्रोह होय है।

कठि० समास-सत्यः संकल्पो यस सः सत्यसंकल्पः, तसात्। ४।

सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति । आज्ञा पूर्वे तु या जाता गंगासागरसंगमे । ५ । याऽपि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्वयं मया । देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः । ६ । अन्वय—सेवकस्य तु अयं धर्मः (अस्ति) स्वामी खस्य करिष्यति, पूर्वे तु गंगासागरसंगमे या आज्ञा जाता, पश्चात् मधुवनेऽपि या जाता, मया देहदेशपरित्यागः तहृयं न कृतं, तृ-तीयः लोकगोचरः (कृतः)।

भावार्थ—सेवकको तो श्रीहरिकी आज्ञाकरनी येही धर्म है, प्रभु अपने भक्तको सब कार्य स्वयं करेंगे, पहलें तो गंगासागर-संगमपे जो देहपरित्यागरूप आज्ञा भयी, और पीछें मधुवनमेंभी जो देशपरित्यागरूप आज्ञा भई, मैने देहदेशपरित्यागरूप दोनों आज्ञा नहीं करीं परन्तु तीसरी लोकमें प्रसिद्ध संन्यासप्रहणपू-विक गृहको परित्यागरूप आज्ञा करी।

कठि० समास-गंगा च सागरश्च गंगासागरौ तयोः संगमः, तसिन्। तयोः द्वयं तद्वयम् । ५-६ ।

> पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं नचाऽन्यथा। लौकिकप्रभुवत्कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन। ७।

अन्वय-अहं सेवकः अन्यथा न, तत्र पश्चात्तापः कथं, च कृष्णः लौकिकप्रभुवत् कदाचन न द्रष्टन्यः।

भावार्थ—में प्रभुको सेवक हूं और नहीं हूं, तासूं फलमें विलंब होय तौभी पश्चात्ताप क्यों करनो, और श्रीहरिकूं लौकि-कराजा आदिकी तरह चलचित्त कभीभी नहीं जाननें चहियें।

कठि० समास—लोके भवः लौकिकः, लौकिकश्वासौ प्रमुख लौकिक-प्रमुः, लौकिकप्रभुणा तुल्यः लौकिकप्रमुवत् । ७ ।

सर्वे समर्पितं भक्तया कृतार्थोसि सुखी भव।
प्रौढापि दुहिता यद्घत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे। ८।
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा।
अन्वय—भक्त्या सर्वे समर्पितं, कृतार्थः असि, सुखी भव,

यद्वत् प्रौढा अपि दुहिता स्नेहात् वरे न प्रेप्यते, तथा देहे न कर्तव्यं अन्यथा वर: न तुप्यति ।

भावार्थ—भक्तिसूं आसासहित सव अपनी वस्तुनको अपण तेने कियो, तासूं तू कृतार्थ है, और पहलेंकी तरह सुखी हो, हे अन्त:करण जैसे कितनेक अज्ञानी पतिके यहां जायवे लायकभी कन्याकों स्नेहसों वाके पतिके यहां नहीं भेजे हैं, तैसें देहत्यागके विषयमें तोकूंभी विलंब नहीं करनो चहिये, विलंबकरवेसूं प्रभु प्रसन्न नहीं होंयगे। ८।

लोकवच्चेत्थितिर्मे स्यार्तिं स्यादिति विचारय । ९ । अशक्ये हरिरेवाऽस्ति मोहं मागाः कथंचन । इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः । १० । चित्तं प्रति यदाकण्यं भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत् । । इति श्रीवल्लभाचार्यकृतोऽन्तःकरणप्रवोधः सम्पूर्णः ।

अन्वय—(हे अंत:करण) लोकवत् चेत् मे स्थितिः स्यात् किं स्यात् इति (लं) विचारय अशक्ये हिर: एव अस्ति (अतः) कथंचन मोहं मागाः श्रीकृष्णदासस्य वहभस्य चित्तं प्रति इति हितं वचः, यत् आकर्ण्य भक्तः निश्चिन्ततां व्रजेत्।

भावार्थ—हे अंतःकरण अन्यलोककीतरह मेरीभी जो लौ-किकडरकर्षादिके लिये लोकमें स्थिति होय तो कहा होय, यह तूही विचारकर, अर्थात् लौकिक उत्कर्पके लिये प्रभुकी अप्रस-त्रता करनी योग्य नहीं है, अशक्य कार्यमें श्रीहरिही पुरुपार्थ-सिद्ध करवे वारे हैं तासूं कोईतरहकी चिन्ताकूं प्राप्त मत होय, श्रीहरिके दास श्रीवल्लभाचार्यको अंतःकरणके प्रति यह हितकारी (यथार्थ) वचन है जाकूं अच्छीतरह सुनकें भक्तजन, चिन्तार-हित होयजांय हैं। ९-१०॥।

। इति श्री अंतःकरणप्रवोध त्रजभाषा सम्पूर्णा।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

विवेकधैर्याश्रयकी विवृति।

विवेकधेर्ये सततं रक्षणीये तथाश्रयः।

विवेकस्तु 'हरिः सर्वे निजेच्छातः करिष्यति'। १।

अन्वय—विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये, तथा आश्रयः (रक्ष-णीयः), तु हरिः निजेच्छातः सर्वे करिष्यति (इति) विवेकः।

भावार्थ—विवेक और धैर्य हमेशां राखने तथा आश्रयभी राखनो, और 'श्रीहरि अपनी इच्छासूंही अथवा अपने भ-क्तनकी इच्छासूं सर्व करेंगे' याको नाम विवेक है।

कठि० समास—निजा चासौ इच्छा च, तसाः निजेच्छातः। किंवा, निजानां इच्छा निजेच्छा।

प्रार्थिते वा ततः किं स्थात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्। सर्वत्र तस्य सर्वे हि सर्वसामर्थ्यमेव च।२।

अन्वय—स्वाम्यभिप्रायसंशयात्, प्राधिते वा ततः किं स्यात्, हि तस्य सर्वत्र सर्वे, च सर्वसामध्ये एव ।

भावार्थ—'प्रभुक्तं हमारी इच्छितवस्तु देयवेकी इच्छा है के नहीं' ऐसी संदेह होयवेसूं जो प्रार्थनाभी करी जाय तो कहा होय, अर्थात् कछु फल नहीं होय, तासों 'श्रीहरिकूं सर्वत्र सर्व-वस्तु लभ्य हैं' और 'सर्ववस्तुके देयवेकी सामर्थ्यभी है ही' यों मनमें दृढता राखकें सेवाकरनो।

कठि० समास—सामिनः अभिप्रायः साम्यभिप्रायः, तसिन संप्रयः साम्यभिप्रायसंशयः, तसात् । समर्थस कमं सामध्ये, सर्व च तत्सामध्ये च सर्वसामध्येम् । २ ।

अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात्। विशेपतश्चेदाज्ञा स्यादंतःकरणगोचरः। ३। तदा विशेपगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दहिकात्।

अन्त्रय—स्वाम्यधीनत्वभावनान् अभिमानः च संत्याज्यः, अंतःकरणगोचरः (इति) चेत् विशेषतः आज्ञा स्वान्, नदा विशेषगत्वादि भाव्यं, तु देहिकान् भिन्नं (भाव्यम्)।

भावार्थ—'में खामीके अधीन हूं' ऐसी भावनामूं अभिमान नकोभी वासनासहित परिलाग करनो, श्रीहरि सवभक्तनके अंत:करणमें विराजें हें, तासूं यदि सेवादिक विषयमें स्वप्नादि-द्वारा कछु विशेष आज्ञा होय तो लेकिक कार्यके सिवाय सेवा सामग्री आदि, प्रभुकी आज्ञाके अनुसार करनीचहियें।

कठि० समास—सामिनः अधीनः साम्यधीनः, तस मादः साम्य-धीनत्वं, तस भावनं, तसात् । ३ ।

आपद्गत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा । ४ । अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम् । विवेकोऽयं समाख्यातो धेर्यं तु विनिरूप्यते । ५ ।

अन्वय—च आपद्गत्यादिकार्येषु सर्वथा हठः त्याच्यः, सर्वत्र अनाग्रहः (कर्तत्र्यः) धर्माऽधर्माग्रदर्शनं (कर्तव्यं) अयं विवेकः समाख्यातः, धेर्ये तु विनिरूप्यते।

भावार्थ-और धनके संकोचकी अवस्थामें जो सेवाके वडे कार्य आमें उनमें 'कर्जकरकेभी यह करूंगो' ऐसो हठ न करनों, और 'सेवाको परित्यागक्रकेभी' हवनादि कार्य करूंगो, एसोभी आग्रह न करनो किन्तु सेवाके अनवसरमें वे कार्य करने तथा श्रुत्युक्त स्मृत्युक्त और भगवद्धर्मके वलावलको विचारकरके अपने ... अधिकारानुसार कार्य करने । ४-५ ।

> त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा । तक्रवदेहवद्माव्यं जडवद्गोपैभार्यवत् । ६ ।

अन्वय-आमृतेः सर्वतः सदा त्रिदुः खसहनं धैर्य, तक्रवहे-हवत् जडवत् गोपभार्यवत् भाव्यम् ।

भावार्थ—'मरणपर्यन्त सवतरहसों और सवसमयमें आधिभौतिक आध्यासिक आधिदैविक (परीक्षाकेलिये भगवइत्त)
'तीनों तरहके दु:खनको सहनकरनो' धैर्य कहावे है, देहाध्यासको
परित्याग करवेके लिये छाछकीतरह विचार करनो अर्थात् जैसे
घीनिकासे पीछें कोईभी छाछमें मोह नही राखे है ऐसें देहमें
मोह न करनो, आध्यासिक दु:ख सहन करते समय जडमरतके
धैर्यको विचार करनो और भगवान्ने परीक्षार्थ दिये दु:खनके
भोगसमयमें गोपस्त्रीकीतरह दु:ख सहन करनो । अथवा अंतगृहगत गोपीनकीतरह भगवद्विरह सहन करनो । ६।

क० समा०—तकेण तुल्यं तकवत्, तचासौ देहश्च तकवदेहः, तेन तुल्यं तकवदेहवत् । भार्याणां समूहः भार्यं, गोपानां भार्यं गोपभार्यं तेन तुल्यं गोपभार्यवत् ।

प्रतीकारो यहच्छातः सिद्धश्चेत्रायही भवेत्। भार्यादीनां तथाऽन्येषामसतश्चाक्रमं सहेत्। ७।

१-हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजंगदष्टं देशान्तरे विधिवशाद्गणिकाऽस्मि जाता ।
पुत्रं पतिं समिधगम्य चितां प्रविष्टां शोचामि गोपग्रहिणी कथमद्य तकम्।१।
इत्याख्यायिकाऽत्रानुसंधेया ।

अन्त्रय—चहच्छातः चेन् प्रतीकारः सिद्धः आप्रही न भ-वेन्, भार्यादीनां च अन्येपां च असतः आक्रमं सहेन्।

भावार्थ—भगविद्च्छासों जो दुःखनको उपाय होय जाय तो दुःख सहन करवेमें आयह न करें, और स्त्रीपुत्रादि, बन्धु-वर्ग, तथा और सेवकादिने किये अपमानकोंभी सेवानि-वहिके लिये सहन करें। ७।

स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत्। अञ्जूरेणाऽपि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात्। ८। अन्वय—स्वयं इन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत्, स्वस्य असामर्थ्यभावनात् अञ्जूरेण अपि कर्तव्यम्।

भावार्थ-अपने भोगवेक छिये सर्वविषयनको इारीरवाणी-मनस् परित्याग करे, और 'इन्द्रियनको दमनकरनो मेरी शक्तिस्ं बाहर है' ऐसे विचारस्ं असमर्थ भये पुरुषक्ंभी इन्द्रियनको दमन करनो चहिये।

कठि० समास—कायश्च वाक् च मनश्च कायवाच्यनः, तेन । समा-न्तविधेरनित्यत्वम् ।

अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् । ं एतत्सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते । ९ ।

अन्वय-अशक्ये हरिः एव अस्ति, (यतः) आश्रयतः सर्वे भवेत्, अत्र एतत्सहनं उक्तं, अतः आश्रयः निरूप्यते ।

भावार्थ—आपस्ं न वनसके ऐसे कार्यमें श्रीहरिही रक्षक हैं, क्यों के प्रभुके दृढ आश्रयसों सर्वकार्यनकी सिद्धि होय है, यहां यह त्रिदु:खसंहनरूप धैर्यको निरूपण कियो, अव आगें आश्रयको निरूपण करें हैं। ९। ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः। दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे। १०। भक्तद्रोहें भक्त्यभावे भक्तेश्चापि कमे कृते। अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वत्र शरणं हरिः। ११। अन्वय—ऐहिके पारलोके च दुःखहानौ तथा पापे, भये (च) कामाद्यपूरणे, सर्वथा हरिः शरणं (अस्ति), (किंच) भक्तद्रोहे, भक्त्यभावे च भक्तैः कमे कृते, अपि वा अशक्ये वा सुशक्ये सर्वथा हरिः शरणम्।

भावार्थ—या लोकसंवंधी और परलोकसंवंधी कार्यमें, तीत-प्रकारके दु:खनकी निवृत्ति होयवेमें, अज्ञानसूं वनते पापनके विपयमें, और राज चौर नरकादिके भयमें, तथा मनोरथकी अप्राप्तिमें, सवतरहसूं भक्तके दु:ख दूरकरनवारे श्रीहरिही रक्षा-करवेवारे हैं, तथा भक्तनके द्रोहवनवेमें, भक्तिके अभावमें, और भक्तनने अपनो तिरस्कार कियो होय वासमयमेंभी, िकंवा अप-नसूं न वनतेकार्यमें अथवा अच्छीतरह वनसकतो होय ऐसे कार्यमें, सर्वसमयमें श्रीहरिही रक्षाकरवेवारे हैं।

कठि० समास—इहभवं ऐहिकं । परलोके भवं पारलौकिकम् । कामादीनां अपूरणं कामाचपूरणं, तिसन् । १०-११ ।

अहंकारकृते चैव पोष्यपोपणरक्षणे ।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथांऽतेवास्यतिक्रमे । १२ ।
अलोकिकमनःसिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः ।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् । १३ ।
अन्वय—अहंकारकृते च एव पोष्यपोषणरक्षणे च एव पोध्यातिक्रमणे, तथा अंतेवास्यतिक्रमे, अलौकिकमनःसिद्धौ 'सर्वार्थे
हरि: शरणं' एवं सदा चित्ते भाव्यं च वाचा परिकीर्तयेत् ।

भावार्थ—स्वभावके वशहोकें कोईसमय जो अहंकार कियो होय तामें, औरभी पालन करवेलायक अपने स्वीपुत्रादिकी रक्षा-करवेमें, और स्वीपुत्रादिकनने अपनो अपराध कियो होय ता समयमें तथा शिष्यादिकनस्ं कछू चूक होयगई होय वा समयमें और अलैकिक देहेन्द्रियादिकी प्राप्तिमें, विशेष कहा मनोरय-मात्रकी सिद्धिमें 'श्रीहरि मेरे रक्षक हैं' ऐसें सदा हृदयमें वि-चारते रहनो, और सुखस्ंभी कहते रहनो।

कठि० समास — अहंकारेण कृतं अहंकारकृतं तिसन् । अठाँिककं च तत् मनश्र अठाँिककमनः (मनइति देहेन्द्रियादीनामुपछञ्जणम्) अठाँ-किकमनसः सिद्धिः अठाँकिकमनःसिद्धिः, तन्याम् । १२–१३ ।

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च ।

प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्। १४।

अन्वय-अन्यस्य भजनं तत्र स्वतः गमनं एव, च कार्य-मात्रे अपि ततः (अथवा) अन्यत्र प्रार्थना विवर्जयेत्।

भावार्थ-अन्यदेवनको भजन, तेसंहीं अपनेआप अथवा कहेसूं उनके शरणजानो, और कोईभी कार्यमें प्रभुसूं अथवा अन्यदेवनसों प्रार्थना करनी। इन सववातनको परित्याग करनो १४।

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा वाधकस्तु सः।

व्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्मम । १५।

अन्त्रय—अतिश्वासः तु न कर्तव्यः, सः सर्वथा वाघकः (भवति), त्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ निर्ममः सन् प्राप्तं सेवेत ।

भावार्थ-प्रमुमें अथवा श्ररणजायवेमें अविश्वास तो कभी न करनों, क्योंके अविश्वास (अन्वयव्यतिरेकसूं) हानिकारक ही है, त्रह्माख और पपीहा पक्षीको विचार करनो अर्थात् जो अविश्वास करे तो जैसे राक्षसनने हनुमान्जीकुं प्रथम त्रह्मास्तसूं चांधे, फिर वाके उपर अविश्वासकरके और रस्सी वगेरहसूं वांधे तव ब्रह्मास्त्रने हनुमानजीकूं खयं छोडदीने और राक्षसनकूं छंका-दाहादि अनेक दु:ख भोगने पडे, अथवा जैसे चातक मेघपे विश्वास राखे है तो वाके अविश्वास न करवेसूं मेघभी खातिवर्पाद्वारा वाकूं सुखदेय है, ऐसेंही प्रभुमें अविश्वास सवतरहसूं हानिकरवे-वारो है, तासूं थोडो के वहोत जो मिळे तामें सेवा करें। १५।

यथाकथंचित्कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि ।
किं वा प्रोक्तेन वहुना शरणं भावयेद्धरिम् । १६ ।
अन्वय—उच्चावचानि कार्याण अपि यथाकथंचित् कुर्यात्,
वा बहुना प्रोक्तेन किम् १ हिरं शरणं भावयेत् । १६ ।

भावार्थ-छोिक वैदिक सवतरहके कार्यनक्रंभी जैसे वनें वैसे करे, वहोत कहा कहें केवल 'श्रीहरि मेरे रक्षक हैं' ऐसो विचार करे, । १६।

एतमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेपां सर्वदा हितम् । कलौ भक्तयादिमार्गा हि दुस्साध्या इति मे मतिः ।१७। अन्वय—एवं, सर्वेपां सर्वदा हितं आश्रयणं प्रोक्तम्, हि कलौ भक्तयादिमार्गाः दुस्साध्या इति मे मतिः (अस्ति)।

भावार्थ—यारीतिसूं सदा सवको हितकरवेवारो भगवान्को आश्रय कहो, कारणके कलियुगमें चार भेदवारे भक्तिमार्ग किठ-नसूं सिद्ध होंय हैं, यह मेरी वुद्धि है। १७।

। इति श्रीविवेकधैर्याश्रयटीका सम्पूर्णा ।

१-साम्प्रतिकमिक्तमार्गीयाणामिमां सेवादुर्दशां विचायैव सर्वेहैराचार्यवयैरि-दमुक्तमिति भाति । अतु०

॥ श्रीहरिः ॥

त्रजभापामें

कृष्णाश्रयकी टीका।



सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि । पापंडप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम । १।

अन्वय—खलधर्मिणि कला सर्वमार्गेषु नष्टेषु च लोके पापं-डप्रचुरे मम कृष्ण एव गति:।

भावार्थ—इप्ट धर्मवारे या कलियुगमं वेदोक्त सब मार्ग छप्त होय गथे हैं, और लोकभी अतिपाखंडी होयगये हैं, तासों अब मेरे श्रीहरिही रक्षा करवेवारे हैं।

कठि० समास—खल्थासो धर्मश्र खल्घर्मः, खल्घर्मः अस्ति यसिन् खल्धर्मां, तसिन्।पापंडः प्रचुरः यस सः पापंडप्रचुरः, तसिन्।१।

> म्लेच्छाकान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च । सत्पीडाव्ययलोकेषु कृष्ण एव गतिर्भम । २ ।

अन्त्रय-पापैकनिलयेषु सत्पीडान्यत्रलोकेषु देशेषु, म्लेच्छा-क्रान्तेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः (अस्ति)।

भावार्थ—पापमात्रके रहवेके प्रधान घर, और सत्पुरुपनकी पीडासूं दु:खितंभये हैं लोक जिनके, एसे देश, म्लेच्छनने दवा- यलीने हैं तासूं श्रीकृष्णही मेरी रक्षा करवेवारे हैं।

कठि॰ समास—एके च ते निलयाश्च एकनिलयाः, पापस एकनिलयाः पापैकनिलयाः, तेषु । सतां पीडा सत्पीडा, तया व्ययाः लोकाः येषु ते, तेषु । २ ।

गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टेरेवावृतेष्विह। तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम। ३।

अन्वय—इह दुष्टैः एव आवृतेषु गंगादितीर्थवर्येषु, तिरोहि-ताधिदैवेषु (सत्सु) सम कृष्ण एव गतिः।

भावार्थ—या किलमें दुष्टजननस्ं आकान्त, गंगादिकूं आदि-लेकें उत्तम २ तीर्थनकेभी जब अधिष्ठाता देवगण (किंवा आधि-देविक तीर्थ) तिरोहित होयगये तो अब मेरे श्रीकृष्णही रक्षक हैं। ३।

> अहंकारविमूढेपु सत्सु पापानुवर्तिषु । लाभपूजार्थयलेपु कृष्ण एव गतिर्मम । ४ ।

अन्वय-अहंकारविम्हेपु, लाभपृजार्थयनेपु सत्सु, पापानु-वर्तिपु, मम कृष्ण एव गतिः।

भावार्थ-अहंकारकरके भ्रान्त और लाभ और मानकें लिये विशेष यत्न करनवारे सत्पुरुपमी जव पापको आचरण करन लगगये तो मेरे श्रीकृष्णही रक्षक हैं।

कठि० समास—लामश्रपूजा च लामपूजे, ताभ्यामिति लामपूजार्थे, लामपूजार्थे यतः येपां ते, तेषु ।

> अपरिज्ञाननप्टेषु मंत्रेष्वव्रतयोगिषु । तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम । ५।

अन्वय—अपरिज्ञाननप्टेषु अत्रतयोगिषु मंत्रेषु, तिरोहिताधि-दैवेषु (सत्सु), मम कृष्ण एव गतिः।

भावार्थ—स्वरूपज्ञान न होयवेसूं और ब्रह्मचर्यादितपोरिहत पुरूपनके पास आपवेसूं मंत्रभी, जव आधिदैविकशक्तिसूं रहित होयगये तो मेरे रक्षक श्रीकृष्णही हैं। ५। नानावादविनप्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु । पापंडैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम । ६ ।

अन्वय-पापंडैकप्रयत्नेषु सर्वकर्मत्रतादिषु, नानावादिवनष्टेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः।

भावार्थ—पापंडको ही जिनमें एक यब है ऐसे सब कर्म और व्रतादिभी जब अनेक नास्तिकनके विवादनस्रं नष्ट होयगये तो अब श्रीकृष्णही मेरे रश्चक हैं। ६।

अजामिलादिदोपाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः । ज्ञापिताऽखिलमाहातम्यः कृष्ण एव गतिर्मम । ७ ।

अन्वय—अजामिलादिदोपाणां नाशकः ज्ञापिताखिलमा-हात्म्यः अनुभवे स्थितः कृष्ण एव मम गतिः।

भावार्थ-अजामिल आदि जीवनकेभी दोपनकूं दूरकरवेवारे और ताहीसों प्रगटिकयो सर्व निजमाहात्म्य जिनने ऐसे, और अनुभवमें आते श्रीकृष्णही मेरे रक्षक हैं। ७।

> प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत्। पूर्णानंदो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम । ८।

अन्वय—सव देवता भगवच्छक्तिके वशीभूत हैं, और अक्ष-रब्रह्मभी गिनेभये आनंदवारों है, और श्रीहरि तो पूर्ण आनंद-वारे हैं तासूं श्रीकृष्णही मेरे प्राप्त करवेलायक हैं। ८।

> विवेकधैर्यभक्तयादिरहितस्य विशेषतः। पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम। ९।

अन्वय-विवेकधैर्यभत्तयादिरहितस्य विशेषतः पापासक्तस्य दीनस्य मम (अधिकारिण) कृष्ण एव गति:।

भावार्थ-विवेक, धेर्य और भक्तिमूं रहित और वहोतकरके पापमेंही आसक्त और दोन, मेरे (अन्य अधिकारीके) श्रीकृ-प्णही रक्षक हैं।

कठि० समास—विवेकश्र धैर्यं च मक्तिश्र विवेकधैर्यमक्तयः, ताः आदिर्थस तत् विवेकधैर्यमक्तयादि, तेन रहितः विवेकधैर्यमक्तयादिरहितः, तस्र । ९ ।

सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत्। शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्। १०।

अन्त्रय—(यः) सर्वसामर्थ्यसिहतः (च) सर्वत्र एव अ-खिलार्थकृत्, (तं) शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं अहं विज्ञापयामि।

भावार्थ—जो सर्वशक्तीनस्ं युक्त और देशकालवर्ण आश्र-मादि सर्व अवस्थामें भक्तनके मनोरथकुं पूर्ण करवेवारे हैं, शर-णमें आयेको उद्धारकरवेवारे उन श्रीकृष्णकी में प्रार्थना करूं हूं १०

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत्कृष्णसन्निधौ । तस्याश्रयो भवेत्कृष्ण इतिश्रीवहाभोऽत्रवीत् । ११ ।

। इतिश्रीवहभाचार्यविरचितः कृष्णाश्रयः सम्पूर्णः ।

अन्वय—यः इदं कृष्णाश्रयं स्तोत्रं कृष्णसन्निघौ पठेत्, तस्य कृष्णः आश्रयः भवेत् इति श्रीवह्नभः अत्रवीत् ।

भावार्थ—जो भक्त या कृष्णाश्रयस्तोत्रको, भगवत्संनिधानमें पाठकरे, वाके श्रीकृष्ण आश्रयस्प होय हैं, यहवात श्रीत्रहमा-चार्यने कही । ११।

। इतिश्रीकृष्गाश्रयटीका सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभापामें.

चतुःश्लोकीकी विवृति ।

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो त्रजाधिपः। स्वस्याऽयमेव धर्मो हि नान्यः कापि कदाचन। १।

अन्वय-सर्वेदा सर्वभावेन त्रजाधिप: भजनीय: खख अयं एव धर्म: क्र कदाचन अपि अन्य: न (अस्ति)।

भावार्थ—सर्वसमयमें पितपुत्र धन गृह सय श्रीकृष्णही हैं या भावसूं श्रीत्रजेश्वर श्रीकृष्णकी सेवा करनी चिह्ये, भक्तनको तो येही धर्म है, देश वर्ण आश्रम आदि कोई अयस्थामें और कोई समयमेंभी अन्य धर्म नहीं है।

कठिनांशका समास—सर्वश्चासौ भावश्च सर्वभावः, अर्थात् सर्वोपि पतिपुत्रगृहादि मम भगवानेवेति आत्मन भावः । १ ।

एवं सदा स्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति । प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् । २ ।

अन्वय—सदा खकर्तव्यं एवं, (हरि:) ख्रयं एव करि-ष्यति, हि प्रभुः सर्वसमर्थः ततः निश्चिन्ततां व्रजेत्।

१-'भिक्तमार्गे हरेर्दासं धर्में प्रशे हिरितेव हि-कामो हरेदिंहक्षेव मोक्षः कृ-ष्णस्य सेवनम्'। या वचनस्ं श्रीहरिभक्तनक्ं तो हिरिसेवा, श्रीहरि, हरिदर्शन, और श्रीहरिको प्रेम ही कमसं धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष हैं।

भावार्थ—सदां भगवदीयनको कर्तव्य पूर्वोक्त प्रकारको है, फलदानादि श्रीहरिको कर्तव्य है, तासू वे खयं करेंगे, कारणके प्रमु कर्तुमन्ययाकर्तुं सर्वसमर्थ हैं, तासूं ऐहिक पारलोकिक मनो-रथनके विषयमें निश्चिन्त होयकें रहनो। २।

> यदि श्रीगोकुलाघीशो धृतः सर्वात्मना त्ददि। ततः किमपरं त्रृहि लोकिकेवेंदिकरपि। २।

अन्वय—यदि श्रीगोक्तलाधीशः सर्वात्मना त्हिद धृतः, ततः लौकिकै: वैदिकै: अपि अपरं (फलं) किम् (अस्ति) (इति) (त्वं) वृहि।

भावार्थ—हे अधिकारिवर्ग ? यदि प्रभु श्रीकृष्णक्तं सवतर-हसं हृदयमें धारणिकये, तोफिर तासं अधिक, छौकिकश्रेयआदि और वैदिकश्रेयआदि फलनसंभी कहा प्रयोजन है, ये कहो। ३।

> अतः सर्वात्मना शश्वद्गोकुलेश्वरपादयोः । स्मरणं भजनं चाऽपि न त्याच्यमिति मे मतिः। ४। । इति श्रीमदृहभावायंविरिवता चतुःशोकी सम्पूर्ण।

अन्त्रय—अतः शश्वत् गोक्कलेश्वरपादयोः सर्वासना स्मरणं च भजनं अपि न त्याज्यं इति मे मतिः (अस्ति)।

भावार्थ-अन्य अवतारनकरतें श्रीकृष्णने अपने भक्तनकृं स्वरूपानंदको दान विशेष दियो है तासूं, हमेशां श्रीगोकुल्पति-श्रीह्रिके चरणनमें सर्वोत्मभावसूं स्मरण तथा सेवन तथा चरण-रज, कभी न छोडनी यह मेरी बुद्धि है। ४।

। इति श्रीचतुःश्लोकीत्रजभाषा सम्पूर्णा ।

व्रजभापामें

भक्तिवर्धिनीकी टीका।



यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्तथोपायो निरूप्यते । वीजभावे दृढे तु स्यात्त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात् । १ ।

अन्वय—यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्थात् तथा उपायः निरूप्यते, वीजभावे दृढे (सित) त्यागात् तु श्रवणकीर्तनात् (भक्तिः-प्रवृद्धा) स्थात् ।

भावार्थ—जैसें भक्ति अत्यंत वृद्धिक् प्राप्त होय, तेसो उपाय वतावें हैं, अनुमहसूं भयो प्रेमरूप वीज जब दृढ होय जाय, तापीछें भक्तिमार्गीयसाधननसूं, अन्य साधनको त्याग कर वेसूं, तथा श्रवण स्मरण कीर्तनादि करवेसूं, भक्ति प्रवृद्ध होय है।

कठि० समास—नीजरूपो भावः वीजभावः । श्रवणकीर्तनयोः समा-हारः तसात् । १ ।

> वीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः। अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूँजया श्रवणादिभिः।२।

अन्वय चीजदार्ह्यप्रकारः तु गृहे खिला स्वधर्मतः अन्या-चृत्तः (सन्) पूजया श्रवणादिभिः कृष्णं भजेत्।

भावार्थ-प्रेमरूपबीजके दृढ होयवेको प्रकारतो येहे के, गृहस्थाश्रममें रहकें अपने वर्णाश्रमप्रयुक्त धर्मनकूं साधन करतो,

१-पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैरिति समाधिभाषा ।

पूजासूं (प्रेमपूर्वक दर्शन करते सेवा करनो) और अवण कीर्त-नादिकनसूं श्रीकृष्णकी तनुजा वित्तजा सेवा करें।

क० समा०—दृदस भावः दार्ख्यं, वीजस दार्ख्यं वीजदार्ख्यं, तस प्रकारः । न व्यावृत्तः अव्यावृत्तः । २ ।

> व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यंतेत्सदा । ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत् । ३ । वीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नाऽपि नश्यति ।

अन्वय—ज्यावृत्तः अपि हरौ चित्तं (आसन्य) श्रवणादौ सदा यतेत्, ततः प्रेम आसक्तिः च न्यसनं यदा भवेत् (तर्हि) तत् शास्त्रे दृढं वीजं उच्यते, यत् न अपि नश्यति।

भावार्थ—कदाचित् अशक्तिआदि होयवेसूं जो वर्णाश्रमधर्म न वनसकते होंय तोभी श्रीहरिमें चित्तकूं लगायकें श्रवणकीर्त-नादिक करवेमें सदा यत्र करे, तेसें करवेसूं श्रीहरिमें प्रेम, आसक्ति, और व्यसन, जब होंय तो वे सब होनोही शास्त्रमें दृढ वीजभाव कहाो है, जो वीजभाव दु:संगादि अथवा काला-दिकनके वलसूंभी नष्ट नहीं होय है। ३।

> स्रेहाद्रागविनाशः स्थादासत्तया स्याद्वहारुचिः। ४। गृहस्थानां वाधकत्वमनात्मत्वं च भासते। यदास्याद्व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात्तदैव हि। ५।

अन्वय—स्नेहात् रागविनाशः स्यात्, आसत्त्या गृहारुचिः स्यात्, गृहस्थानां (पदार्थानां) वाधकत्वं 'च' अनात्मलं भासते,

१-अनुदात्तेत्वरुक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ।

यदा कृष्णे व्यसनं तदा एव (भक्तः) कृतार्थः; स्थान्, (इति) हि।

भावार्थ—प्रभुमें प्रीति होयवेसं जन्यत्र जगद्वर्तीपदार्थनमें भयेखेहको नाग्न होय है, और प्रभुमें आसक्ति होयवेसं गृहादिकमें अरुचि होय जाय है और ताहीसं गृहवर्ती सर्व पदार्थ 'प्रभुप्री तिके नाग्नकरवेवारे हें 'तथा 'प्रभुसंबंधी नहीं हें 'ऐसे दीख़बे लगें हैं, जब श्रीहरिमें आसक्तिहोतें होतें व्यसन होय जाय है तब ही भक्त कृतार्थ कृतकृत्य कहाो जाय है, यह निश्चय है। ४-५।

तादशस्याऽपि सततं गृहस्थानं विनाशकम् । त्यागं कृत्वा यतेद्यस्तु तदर्थार्थेकमानसः । ६ । लभेत सुदृढां भक्तिं सर्वतोप्यधिकां पराम् ।

अन्वय नाहशस्य अपि गृहस्थानं विनाशकं, (तस्मात्) स्थागं कृत्वा तु यः तद्रश्रीयंकमानसः (सन्) यतेत्, (सः) सुदृढां सर्वतः अपि अधिकां परां भक्ति स्भेत ।

भावार्थ — कृतार्थभये अर्थात् प्रमुकेसाक्षात्संवंधवारे भक्तको घरमें रहनो प्रमुक्तेहकूं मिटायवे वारो है, तासूं गृहादिको त्याग-करकें जो भक्त, फल्ल्पाभक्तिकेभी फल्ल्पश्रीकृष्णमें मनकूं द्वलगातो भयो यन करै तो वह वडीगाढी तथा चारांतरहकी मुक्तिनसूंभी अधिक फल्ल्पाभक्तिकूं प्राप्त होय।

कठि० समा०-सएव अर्थो यसाः सा तद्यीं, तसाः अर्थः तद्-र्थार्थः, तद्यीर्थे एकं मानसं यस सः तद्यीर्थेकमानसः । ६।

त्यागे वाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात्तथान्नतः। ७। अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः। अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुप्यति। ८। अन्वय—सागे दुःसंसर्गात् तथा अन्नतः वाधकभूयस्तं, अतः हरिस्थाने तत्परे तदीयैः सह स्थेयं, (किंवा) अदूरे वा विप्रकर्षे (स्थेयं) यथा चित्तं न दुष्यति।

भावार्थ—असांप्रदायिक त्यागकरवेमें अदृष्टादिसूंभये दुःसंग तथा असमिंत आदि अन्नसूं, वेसे प्रभुप्रेमहोयवेमें वहोतसे प्रति-वंध होयवेकी संभावना है, तासूं जहां निरंतर सेवाप्रवाह चलतो होय ऐसे पवित्र वैष्णवतीर्थनमें हिरसेवातत्परभगवदीयनके संग रहे, यदि ऐसें रहवेमेभीं अभिमानादिसूं चित्तमें कोईतरहको दोप आतो होय, तो वहांही अलग पासमें अथवा अति दूर रहे, जासूं चित्त दुष्ट न होय।

कठि० समास-भ्यसः भावः भ्यस्त्वं, वाधकानां भ्यस्त्वं वाधक-भ्यस्त्वम् । तस्मिन् पराः, तत्पराः, तः । ७-८ ।

> सेवायां वा कथायां वा यस्याऽऽसक्तिईढा भवेत्। यावज्जीवं तस्य नाशो न काऽपीति मे मतिः। ९।

अन्वय—यस्य सेवायां वा कथायां वा दृढा आसक्तिः यावज्ञीवं भवेत्, तस्य नाज्ञः क अपि न (स्यात्) इति मे मतिः (अस्ति)।

भावार्थ—जा भक्तकी प्रमुसेवामें अथवा प्रभुचरित्रकथामें दृढ आसक्ति जीवनपर्यन्त होय तो वाभक्तको कोईभीदेश अथवा कालमें नाश नहीं होय है, यह मेरी (श्रीवल्लभाचार्यजीकी) दुद्धि है।

कठिं समास-जीवनं जीवः, यावत् जीवः यावजीवम् । ९ ।

वाधसंभावनायां तु नैकान्ते वास इप्यते । हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिप्यति न संज्ञयः । १० ।

अन्वय—वाधसंभावनायां तु एकान्ते वासः न इप्यते, तु हरिः सर्वतः रक्षां करिष्यति (तत्र) न संशयः (अस्ति)।

भावार्थ-गृहादिछोडकें हरिखानमें रहवेमें यदि कोईतरहस्ं प्रभुप्रेममें प्रतिवंध मालुम पडतो होय तो एकान्तमें वास नहीं करनो चिहये, गृहादिमें रहवेसूं अनेक विन्न पडेंगे ऐसो तर्कभी युक्त नहीं है, क्योंके सर्वदु:खदूरकरवेवारे श्रीकृष्णही अपनेभ-क्तनकी सवतरहसूं रक्षा करेंगे, यामें कछु संदेह नहीं है। १०।

> इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्वं निरूपितम् । य एतत्समधीयेत तस्यापि स्यादृढा रतिः । ११ ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता भक्तिवद्विनी सम्पूर्णा।

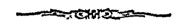
अन्त्रय—इसेवं गृहतत्वं भगवच्छास्तं (मया) निरूपितं, यः एतत् समधीयेत तस्य अपि (हरौ) दृहा रितः स्यात्।

भावार्थ-या रीतिसूं दुर्लभ है सार जाको ऐसो ये हरि-शास्त्र मेंने कहाो, जोकोई याको अभ्यास करै, वाकीभी श्रीहरिमें गाढीशीति होय है।

कठि० समास-गृहं तत्वं यस तत् गृहतत्वम्। ११।
। इति श्रीभिक्तविदंगीवजभाषा सम्पूर्णा।

व्रजभापामें

जलभेदकी टीका।



नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्भुणानां विभेदकान्। भावान्विंशतिधा भिन्नान्सर्वसंदेहवारकान्। १।

अन्वय—हरिं नमस्कृत्य तद्गुणानां विभेदकान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसंदेहवारकान् भावान् वक्ष्ये ।

भावार्थ-शिहरिकृं नमस्कार करकें श्रीहरिके गुणनकृं जुदे २ दिखावनारे, और वीस प्रकारसूं न्यारे २, तथा फलसा-धनादिके सर्वसन्देहनकों दूर करवे वारे, ऐसे जीवनके भावन (मनोविकार)कृं में कहूंगी।

कठि० समास—तस गुणाः, तहुणाः, तान् । सर्वे च ते सन्देहाश्च, तेषां वारकाः तान् । १ ।

गुणभेदांस्तु तावन्तो यावन्तो हि जले मताः।

अन्वय-यावन्तः (भेदाः) जले मताः तावन्तः तु गुण-भेदाः (सन्ति) हि ।

भावार्थ-- 'कूप्याभ्यः स्वाहा कुल्याभ्यः स्वाहा' इतादि तैत्तिरीयसंहितामें जितनेभेदः जलमें कहेहैं, उतनेही श्रीहरिके गुणनके भेदहें यह निश्चय है।

> गायकाः कूपसंकाशा गंधवी इति विश्वताः। २। कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेऽपि संमताः।

अन्वय्—गंधर्वा इति विश्वताः गायकाः रूपसंकाशाः, यावन्तः कूपभेदाः तावन्तः ते अपि संमताः ।

भावार्थ—गंधर्व नामसों शासमें प्रसिद्ध जो हरिगुण गायक हें वे कूपकीं तरह समझने, जितने उत्तममध्यमादिभेदसं कूपनके भेद हैं, तैसे ही उत्तममध्यमादि तथा भक्त अभक्त आदिभेदनसों गायकनकेभी अनेकभेद हैं।

कठि॰ समास—क्षेः संकाशः क्ष्यसंकाशः। क्ष्यानां भेदाः। २। कुल्याः पौराणिकाः प्रोक्ताः पारंपर्ययुता भुवि । ३। क्षेत्रप्रविष्टास्ते चाऽपि संसारोत्पत्तिहेतवः।

अन्वय-भुवि पारंपर्ययुताः पौराणिकाः क्रुल्याः प्रोक्ताः, ते च अपि (यदि) क्षेत्र प्रविष्टाः (तर्हि) संसारोत्पत्तिहेतवः ।

भावार्थ—भूतलपें परंपरायुक्त जो हरिगुणगायक पौराणिक हें वे नहर समझने, अर्थात् जैसे नहरनको जल स्नानपानादिके उपयोगमें आवे हैं तैसेही पौराणिकनके भावकोभी हरिभक्तिमें उपयोग होय है, परन्तु जो कदाचित् वे और गंधर्व नहरकीतरह क्षेत्रमें अर्थात् स्त्री और शरीरआदिमें आसक्त होय जांय तो वे केवल अहंताममता करायवेवारे हैं,

कठि० समास०--पुराणं विद्नित ते । परंपरायाः भावः पारंपर्यम्, तेन युताः । ३ ।

वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्तसंज्ञिताः । ४ । जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः ।

अन्वय—वेश्यादिसहिताः मत्ताः गायकाः गर्तसंज्ञिताः किंच नीचाः गानोपजीविनः तु जलार्थमेव गर्ताः । भावार्थ—नेश्वाकृं आदि छेंकं स्वैरिणी स्त्रीनस्ं संगराखेव वारे और मदोन्मत्त जो गायक हैं वे गर्त (आठहजारधनुपप्रमा-णके गढहा) कहे हैं, अर्थात् जैसं गर्तको जल सत्पुरुपनके काममें नहीं आवे है, ऐसेही वेश्यालंपट प्रमादी गायकनकोभी भाव सत्पुरुपनकृं प्रहणकरवे लायक नहीं है, प्रत्युत वह अनिष्टफल देयवेवारो है, जाति और धर्मादिसं नीचे और गानस्ं जीविका चलायवेवारे जो गायक हैं वे उच्छिष्ट जलके लिये किये गढे-लाकी तरह हैं, अर्थात् जैसे उच्छिष्टको जल कोईके स्पर्शादिके काममेभी नहीं आवे ऐसेही उनको भावभी कछुकामको नहीं हैं।

कठि० समास-गर्त इति संज्ञा संजाता येषां ते, । वेश्या आदि-र्यासां ताः, ताभिः सहिताः । गानं उपजीवन्ति ते । ४ ।

हदास्तु पंडिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्पराः। ५। संदेहवारकास्तत्र सूदा गंभीरमानसाः।

अन्वय-भगवच्छास्रतत्पराः पंडिताः तु ह्दाः प्रोक्ताः, तत्र गंभीरमानसाः संदेहवारकाः सूदाः ।

भावार्थ—गीता भागवतादिमें तत्पर ऐसे शास्त्रोत्पत्रवुद्धिवारे विद्वान जो हें सो इद कहे हैं, अर्थात् जैसे हद (नदीके एक देशको अगाध जलको स्थान-जाकूं औल कहें हें) को जल जैसे उत्तम है ऐसे उन पंडितनको भावभी उपयोगाई श्रेष्ठ है। और वैसे पंडितनमेंभी जो मनके गंभीर और संदेहनके दूर करवे-वारेहें वे सुन्दर स्वच्छ और मीठे जलके हद हैं, उनको भाव स्वरूप और गुणसूं उत्तम है।

फठि० समास-भगवतः शास्त्राणि भगवच्छास्त्राणि, तेषु तत्पराः ।५।

सरः कैमलसंपूर्णाः प्रेमयुक्तास्तथा बुधाः । ६ । अल्पश्चताः प्रेमयुक्ता वेशंताः परिकीर्तिताः ।

अन्वय-प्रेमयुक्ताः तथा वुधाः सरः कमलसंपृणीः (?) प्रेम, युक्ताः अल्पश्चताः वुधा वेशंताः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—भगवत्प्रेमसहित और भागवतादि तत्पर जो पंडित हैं सो कमलनस्ं भरेभये सरोवर हैं, अर्थात् उनको जल सुगंधपूर्ण है तैसें इनको भावभी प्रेमयुक्त है। और थोडे ज्ञानवारे और थोडेही प्रेमसं युक्त जो विद्वान् हैं वे छोटे तलावकी तरह कहे हैं, अर्थात् जैसे छोटे तलावको जलकोई विशेष विन्नसं गदलो हो जाय है तैसें ऐसे पंडितनको भावभी कोईक अन्य शास्त्रादिके दु:संगसं विकृत होय सके है। ६।

कर्मशुद्धाः पल्वलानि तथाल्पश्चतभक्तयः। ७। योगध्यानादिसंयुक्ता गुणा वर्ष्या प्रकीर्तिताः।

अन्वय—कर्मन करके ग्रुद्ध और थोडे शास्त्र और मिक्त-वारे जो वक्ता हैं, वे छोटेसे तलावकी तरह जानने, जैसे तलै-याको जल थोडेही कालपर्यन्त रह सके है ऐसे ही उनको भावभी दु:संगादिसूं नष्ट होयसके है, और अष्टांगयोग तथा ध्यान (ईश्वरालंबनमात्र) इत्यादिसूं युक्त जो गुण हैं वे वर्षाके जलके समान समझने, जैसें वर्णाको जल सर्वत्र फैलके सबके उपयोगमें आवे है ऐसेंही उनको भावभी सबके उपयोगमें आवे है।

कठि० समास-योगश्च ध्यानं च योगध्याने, ते आदिः येषां तानि, तैः संयुक्ताः। ७।

१-कमलसंपूर्णमिति कदाचित्स्यात्, अनायासेन विवक्षितार्थवीधिलात्।

तपोज्ञानादिभावेन स्वेदजास्तु प्रकीर्तिताः। ८। अन्वय—तपोज्ञानादिभावेन (संयुक्ताः) तु स्वेदजाः प्रकीर्तिताः।

भावार्थ—कायक्टेश, तथा सांख्योक्त ज्ञान तथा तामेहीं कहाों अनात्म्यवस्तुनको साग, इनसों युक्त जो कर्मी हैं वे पसीनासूं भये जलकी तरह हैं, अर्थात् जैसे स्वेदजल अच्छेव्यवहारमें न आयकें केवल वाकेही शरीरकूं शीतल करे है ऐसें कर्मश्रद्धावारे-नकोभी भाव औरन कूं शाह्य न होयके उनकूं ही शुद्ध करे है।।

अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः। कादाचित्काः शब्दगम्याः पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः।९।

अन्त्रय—अठौकिकेन ज्ञानेन (युक्ताः) कादाचित्काः तु ज्ञाद्दगम्याः ये हरेः गुणाः (ते) पतच्छद्दाः प्रकीर्तिताः।

भावार्थ—भगवद्तुप्रहसूं प्राप्तभये ज्ञानकरकें युक्त और किचत् (कोईसमयही) बुद्धिमें आये तथा प्रामाणिक पुरुपनके शब्दसूं जानवेमें आये ऐसे जो श्रीहरिके गुण हैं, वे पतच्छव्द (पडवेको शब्द जामे होय ऐसे वर्पाको जल) कहे हैं, अर्थात् जैसे वो जल कदाचित् प्राप्य है, तेसें उनके भावभी कदाचित् बुद्धिमें आरूढ होयवेसूं नियमित समयपे ही मिल सके है। ९।

कठि० समास-पततां शन्दः पतच्छन्दः पतच्छन्दो येपां ते ।

देवाद्युपासनोद्भताः पृष्वा भूमेरिवोद्गताः । अन्वय—देवाद्युपासनोद्भताः, भूमेः उद्गता इव पृष्वाः ।

भावार्थ-शिवदुर्गा आदि देवतानके अर्चनकरवेसूं उत्पन्न भये जो गुण अथवा भाव हैं सो मानो भूमिमेंसूंही निकसे होंय ऐसे दीखते ओसके जलकी तरह जानने, अर्थात् जैसे ओसको जल पृथ्वीमेसूं निकसो नहीं है तथापि वैसो दीखे है, ऐसेंही उपासकनके भावभी उनके वा उनके उपास्य देवताके नहीं है भगवान्क ही हैं तथापि उनकेसे दीखे हैं। और वे लोग उन भावनकूं अपनेही मानकें अहंकार करन लगें हैं, तासूं उनको संग करनो योग्य नहीं है।

कठि० समास—देवा आदियेपां ते, देवादीनां उपासना, देवाद्युपास-नया उद्भृताः ।

> साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः। १०। प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पंदमानाः प्रकीर्तिताः।

अन्वय-साधनादिप्रकारेण (युक्तात्) नवधामक्तिमार्गतः प्रेमपूर्त्या रफुरद्धर्माः स्पंदमानाः प्रकीर्तिताः।

भावार्थ—अपने २ वर्ण और आश्रममें कहा जो अग्निहो-त्रादिसाधननको प्रकार तासूंयुक्त जो नवधामिक्तमार्ग वासूं, जव प्रेमकी पूर्णता होय और वा प्रेमपूर्तिसूं जिनके हृदयमें भगवद्भाव और भगवद्धमनको प्राहुर्भाव होय वे निर्झरके जलकी तरह हैं, अर्थात् जैसे निर्झरको जल स्नानपानमें उत्तम है, ऐसे वेभी संग करवेमें प्रशस्त हैं।

कठि० समास-साधनं आदिर्यस सः, साधनादेः प्रकार, तेन । नव प्रकारा यसाः सा, नवधा चासौ भक्तिश्च, नवधाभक्तिरेव मार्गः, तसात् । स्फरन्तो धर्मा येषां, ते । १० ।

> यादशास्तादशाः प्रोक्ता वृद्धिक्षयविवर्जिताः । ११ । स्थावरास्ते समाख्याता मर्यादैकप्रतिष्ठिताः ।

अन्वय—यादृशाः प्रोक्ता तादृशाः (यदि) वृद्धिक्षयि-वर्जिताः मर्थादैकप्रतिष्टिता (भवेयुः) (तर्हि) ते स्थावृराः समाख्याताः।

भावार्थ-जैसे पूर्वऋोकमें कह आये वैसे भक्त जो वहघट सूं रहित होंय अर्थात् जिनकोभाव सांसारिक विन्न और कुतर्क-नसूं वहतो घटतो न होय और जो वे मर्थादामें ही एक निष्टा-वारे होंय तो उन्हें सदा स्थिर रहवेवारे जलकीतरहं समझने।

कठि० समास—वृद्धि क्षयाभ्यां निवर्जिताः, ते । एके च प्रति-ष्टिताश्च, मर्यादायां एकप्रतिष्टिताः ते । ११ ।

> अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा । १२ । संगादिगुणदोपाभ्यां वृद्धिक्षययुता भुवि । निरन्तरोद्गमयुता नद्यस्ते परिकीर्तिताः । १३ ।

अन्वय—अनेकजन्मसंसिद्धाः जन्मप्रभृति सर्वदा संगादि-गुणदोपाभ्यां भुवि वृद्धिक्षययुताः (किंच) निरन्तरोद्रमयुताः (ये व्याख्यातृगुणाः) ते नद्यः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—अनेक जन्मनकरकें अच्छीसिद्धिकूं प्राप्त भये, 'और जन्मसूं छेकें सदा सत्संग, दुःसंग, काछ, कर्म, देश, आदिके गुणदोपनसूं वृद्धि और क्षयकूं प्राप्त होते, तथा निरंतर चछते प्रवाहसूं युक्त, एसे जो गुणानुवादकर्तानके गुण हैं उन्हें नदीके जछकी तरह समझनो।

कठि० समास—अनेकानि च तानि जन्मानि च अनेकजन्मानि, तैः संसिद्धाः । संगः आदिर्येषां ते संगादयः, तिषां गुणदोषौ, ताभ्यां । निरंतरश्चासौ उद्गमश्च निरंतरोद्गमः, तेन युताः । १२–१३ । पताद्याः स्वतंत्राश्चेत्सिन्धवः परिकीर्तिताः ।

अन्वय-एतादृशाः चेत् खतंत्राः (तर्हि) सिन्धवः परि-कीर्तिताः।

भावार्थ-पहलें जैसेही गुण, यदि खतंत्र होंय तो वे गुण महानदीनकी तरह कहे हें।

> पूर्णा भगवदीया ये शेपव्यासाग्निमारुताः । १४ । जडनारदमेत्राद्यास्ते समुद्राः प्रकीतिताः

अन्वय- शेपव्यासामिमारुताः जडनारद्मैत्राद्याः ये पूर्णाः भगवदीयाः ते समुद्राः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ-श्रीसंकर्पण, श्रीव्यास, पुराणवक्ताअग्नि पुराण-वक्तावायु तथा जडभरत, नारद और मैत्रेयकूं आदिलेकें जो पूर्ण भागवत हैं वे समुद्र कहे गये हैं, अर्थात् उनके भाव वा गुण, अक्षोभ्य गम्भीर तथा नानारत्नोपशोभित हैं। १४।

समुद्रमें भी क्षार और मिष्ट, दो भेद हैं तासूं उनको अलग अलग वर्णन करें हैं।

लोकवेदगुणैर्मिश्रभावेनैके हरेर्गुणान्। १५।
वर्णयन्ति समुद्रास्ते क्षाराद्याः पर् प्रकीर्तिताः।
गुणातीततया गुद्धान्सिच्चदानंदरूपिणः। १६।
सर्वानेव गुणान्विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः।
तेऽमृतोदाः समाख्यातास्तद्धाक्पानं सुदुर्लभम्।१७।
अन्वय—एके लोकवेदगुणैः (किंच) मिश्रभावेन हरेः
गुणान् वर्णयन्ति ते क्षाराद्याः षद् समुद्राः प्रकीर्तिताः, (किंच)
ये विचक्षणाः गुणातीततया गुद्धान् सिचदानंदरूपिणः विष्णोः

सर्वान् एव गुणान् वर्णयन्ति ते अमृतोदाः समाख्याताः तद्वा-क्पानं सुदुर्रुभम्।

भावार्थ—इन्हीमं कितनेक जो भागवत, छोकमिश्र वेदमिश्र तथा गुणमिश्र भावस्ं श्रीहरिक गुणनको वर्णन करें वे क्षारकृं आदिलेकें छ समुद्र कहे हैं, तथा जो अलीकिक बुद्धिमान् भक्त, सत्वादिगुणनकृं छोडदेयवेस्ं छुद्ध ऐसे, तथा सिच्चित्वं कहे हैं, ऐसे, श्रीहरिके सब गुणनकोही वर्णन करें वे अमृतसमुद्र कहे हैं, उनकी वाणीको पान अलंत दुर्लभ है।

कठि० समास—लोकश्च वेदश्च गुणाश्च, तैः । मित्रश्चासौ भावश्च मिश्रमावः, तेन । गुणेभ्यः अतीताः, तेषां भावः तत्ता, तथा । चिच, तच, आनंदश्च तेषां समाहारः सचिदानंदं, तत् रूपं येषां ते तान् । १५— १६-१७ ।

> ताहशानां क्रचिद्धाक्यं दूतानामिव वर्णितम् । अजामिलाकर्णनवद्धिन्दुपानं प्रकीर्तितम् ।, १८ ।

अन्वय--दूतानां इव ताहशानां वाक्यं कचित् वर्णितं, (तथा) अजामिलाकर्णनवत् (तच्छ्रवणमि) विन्दुपानं प्रकी-र्तितं (तद्पि दुर्लभमित्यर्थः)।

भावार्थ—पष्टसंघमं कहे विष्णुदूतनके वाक्यकी तरह, ऐसे (पूर्वोक्त) भक्तनके वाक्य कहूं कही वर्णन करे हें तेसेंही अजा- मिलके सुनवेकी तरह, ऐसे वाक्यनको सुननोभी विन्दुपान कहों है, अर्थात् ऐसे वाक्य तथा उनको सुननो यह दोनो दुर्लभ हैं।

कठि० समास—अजामिलस आकर्णनं अजामिलाकर्णनं, तेन तुल्यं, अजामिलाकर्णनवत् । १८ । यो. ६

रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा । तदा छेहनमित्युक्तं स्वानंदोद्गमकारणम् । १९ ।

अन्वय—(तद्वचनैः) यदा रागाज्ञांनादिभावानां सर्वधा नाशनं, तदा (तद्वाक्पानं) स्वानंदोद्गमकारणं (इतिहेतोः) लेहनं इत्युक्तम् (भवति)।

भावार्थ—संसार स्नेह, अज्ञान तथा कामकोधादिकरवेवारे भावनको, जब ऐसे भक्तनके वचन न करकें सर्वथा नाश होय जाय, तब वह श्रवण लेहन कह्यों जाय है, क्योंके एसो श्रवण भगवदानंदको उत्पन्न करवेवारों है।

किटि॰ समास—रागश्र अज्ञानं च ते आदियेषां तेच ते भावाश्र रागाज्ञानादिभावाः तेषां । १९।

. उद्धृतोदकवत्सर्वे पतितोदकवत्तथा।

उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चाऽपि तथात्मनः ।२०।

अन्वय—उक्तातिरिक्तवाक्यानि तथा सर्वे उद्धृतोद्कवत् (च) पतितोद्कवत्, (तेपां) फलं अपि आत्मनः तथा।

भावार्थ—कहे भये भावनसूं युक्त वाक्य, अथवा उनके कहवेवारे वक्ता ये सव पात्रमें निकासे अथवा धरतीमें पढ़े जलकी तरह हैं, अर्थात् निकासो जल जैसें पात्रके अनुसार होय है ऐसेंही उनको भावभी उनके अनुसार होय है, और ऐसे वाक्य अथवा भावनको फलभी वैसोही अर्थात् अल्प ही होय है।

कठि० समास—् उक्तात् अतिरिक्तानि उक्तातिरिक्तानि, तानिच वाक्यानिच उक्तातिरिक्तवाक्यानि । २० ।

इति जीवेन्द्रियगता नानाभावगता भुवि । रूपतः फलतश्चव गुणा विष्णोर्निरूपिताः । २१ ।

। इनि श्रीनद्वरभानार्यभिरिनतो जसभेदः सम्पूर्णः ।

अन्त्रय—इति रूपतः फलतः एव शुवि नानाभावगताः जीवे-न्द्रियगताः विष्णोः गुणाः निरूपिताः ।

भावार्थ—या तरहसं स्वरूप और फलकरफेंही पृथ्वीमें अनेक भावनकं प्राप्तभये तथा जीवनके मनमें रहवेबारे जो श्रीहरिक गुण हैं सो हमने कहे।

कटि० समास--जीवानां इन्द्रियं जीवेन्द्रियं तक्षिन् गताः जीवे-न्द्रियनताः । २१ ।

। इति धीजसभेद बनभाषा सम्पूर्ण ।

व्रजभाषामें.

पश्चपद्यनकी टीका।



श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसा रतिवर्जिताः। अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः। १।

अन्वय-शिकृष्णरसिविक्षिप्तमानसाः (अन्यत्र) रितवर्जिताः लोकवेदे अनिर्देताः (ये) श्रवणोत्सुकाः ते मुख्याः ।

भावार्थ—भगवद्भजनरूपरसस्ं जिनको मन विक्षेपवारो रहतो होय, तथा जो श्रीहरिके सिवाय अन्यपदार्थनमें स्नेह-रहित होंय, और लोक वेदमें सुख न मानते होय और भगव-द्रुणसुनवेमें चाहवारे होंय वे अधिकारी श्रवणमें मुख्य हैं।

कठि० समास--श्रीकृष्णस रसः श्रीकृष्णरसः तसिन् विक्षिप्तं मनो येषां ते श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसाः । १ ।

> विक्किन्नमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविह्नलाः। अर्थेकनिष्ठास्ते चाऽपि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः। २।

अन्वय—तु विक्तिन्नमनसः (च) भगवत्स्मृतिविह्नलाः श्रव-णोत्सुकाः ये अर्थेकिनिष्ठाः अपि ते मध्यमाः ।

भावार्थ-और अच्छीतरह सरसहृद्य तथा भगवान्के-सारणसूं विह्वलरहृनवारे और हरिगुणसुनवेमे उत्साह राखनवारे जो अधिकारी मोक्षादिप्रयोजनमें विशेषनिष्ठावारेभी होंय वे मध्यम कहें हैं। काठि० समास-विक्षिन्नं मनो येषां ते०। अर्थे एव एका निष्ठा येषां ते अर्थेकनिष्ठाः।

> 'निःसंदिग्धं कृष्णतत्वं सर्वभावेन ये विदुः। तत्त्वावेशानु विकला निरोधाद्वा न चाऽन्यथा।३। पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा। अन्यासक्तास्तु ये केचिदधमाः परिकीर्तिताः। ४।

अन्वय ये कृष्णतत्वं निःसंदिग्धं सर्वभावेन विदुः तु आवेशात् वा निरोधान् विकलाः च अन्यथा न, तु ये केचित् कदाचित् पूर्णभावेन पूर्णार्थाः तु सर्वदा न, (किंच) अन्यासक्ताः ते अधमाः परिकीर्तिताः।

भावार्थ—जे अधिकारी सदानन्द श्रीकृष्णके खरूपकृं नि:सन्देह होयकें सब तरह सूं जानें हैं, और भगवानके आवेशसूं किंवा प्रपंचितस्पृतिपूर्वक श्रीहरिमें आसक्ति होयवेसुं विद्वल हैं किन्तु औरत रहसूं विद्वल नहीं, तथा कोई एक परिमित वखतही भगवद्भावसूं कृतार्थ रहें, सर्वदा वैसें न रहें, और अन्य गृहा-दिकमें आसक्तिवारे होंय वे अधिकारी तीसरी कक्षाके हैं।

कठि० समा०—पूर्णश्चासौ भावश्व० । पूर्णा अर्था येषां ते० । अन्येषु आसक्ताः । २-४ ।

> अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु । देशकालद्रच्यकर्तृमंत्रकर्मप्रकारतः । ५ ।

। इति श्रीमद्वहभाचार्यविरचितानि पन्नपद्यानि सम्पूर्णानि ।

१ यह एक क्षोक कदाचित् प्रथमक्षोकके संग होय, अर्थानुसंधानसूं ऐसी संदेह होय है।

अन्त्रय—(ये) मर्खाः देशकालद्रव्यकर्र्टमंत्रकमेप्रकारतः अवणादिषु अनन्यमनसः ते उत्तमाः।

भावार्थ—जो अधिकारिपुरुष श्रवणादिभक्तिमें देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र तथा कर्म इनके प्रकारसूं विचलितहृद्य न होंय वे उत्तम अधिकारी हैं, अर्थात् जो देशकालादिके मोहमें पडके मगवद्गुणश्रवणादिको परिल्ञाग न करै वह उत्तमाधिकारी।

कठिनांशका समास—देशश्र कालश्र द्रव्यं च कर्ता च मंत्रश्र कर्म च एतेषां इतरेतरद्वंद्वः देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्माणि, तेषां प्रकारः देशकालद्रव्य-कर्तृमंत्रकर्मप्रकारः, तसात्०। ५।

। इति श्रीपंचपद्यत्रजभाषा सम्पूर्णा ।

व्रजभाषामें

संन्यासनिर्णयकी टीका।



पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागो विचार्यते । स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेपतः । १ । कर्ममार्गे न कर्तव्यः सुतरां किलकालतः । अत आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वाद्विचारणा । २ ।

अन्वय-पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागः विचायेते, सः विशेपतः भक्तौ (च) ज्ञाने (इति) मार्गद्वितये प्रोक्तः, कर्म-मार्गे कलिकालतः सुतरां न कर्तव्यः, अतः भक्तिमार्गे आदौ कर्तव्यत्वात् विचारणा (क्रियते)।

भावार्थ—पश्चात्तापके दूरहोयवेके लिये संन्यासको विचार करें हैं, वह परिलाग (संन्यास) वहोत करकें भक्ति और ज्ञान इन दो मार्गनमें अपेक्षित होयवेसूं कह्यो है, कर्ममार्गमें तो अभी कलिकाल होयवेसूं कभी न करनो चहिये, तासूं भक्ति-मार्गमें प्रथम करनो चहिये अतएव लागको विचार करें हैं १-२

> श्रवणादिप्रसिद्धार्थं कर्तव्यश्चेत्स नेष्यते । सहायसंगसाध्यत्वात्साधनानां च रक्षणात् । ३। अभिमानान्नियोगाच तद्धमैंश्च विरोधतः ।

अन्वय-अवणादिप्रसिद्धर्थ सः कर्तव्यः (इति) चेत्, न इज्यते, (क्रुतः) सहायसंगसाध्यत्वात् च साधनानां रक्षणात् च अभिमानात् (एवं) तद्धर्भैः विरोधतः (स न कर्तव्यः)। भावार्थ—श्रवणादिभक्ति अच्छीतरह होय सके, याके लिये परित्याग करनो जो ऐसे कहते हो तौभी ठीक नहीं, कारणके श्रवणादिककूं अपनेसमान सहायद्वारा सिद्ध होयवेकी योग्यता है, तथा साधननकी रक्षा करनो चिहये, (सोभी संन्यासमें वने नहीं) तथा अभिमान होयवेसूं, ऐसेहीं संन्यासधर्मनसूं भक्तिको विरोध है तासूं भक्तिके अर्थ तो त्याग नहीं करनो चहिये।

क॰ समास-अवणादेः प्रसिद्धिः, तसे । सहायानां संगः सहायसंगः, तेन साध्यत्वं सहायसंगसाध्यत्वम् । तसात्० । ३ ।

गृहादेनीधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि । ४। अग्रेऽपि ताहरौरेव संगो भवति नान्यथा। स्वयं च विषयाक्रान्तः पाषंडी स्यात्तु कालतः। ५। विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः। अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः। ६।

अन्वय—गृहादेः वाधकलेन यदि साधनार्थ (सः) (तर्हि) तथा (न कर्तव्यः) (यतः) अग्रे अपि ताहशैः एव संगो भवति अन्यथा न, तु कालतः विपयाक्रान्तः स्वयं च पाषंडी स्यात् (किंच) विषयाक्रान्तदेहानां हरेः आवेशः सर्वथा न, अतः अत्र भक्तौ साधने त्यागः सुखावहः न एव।

भावार्थ — गृहादिक भगवदासिक सायनमें वाधक हैं यों मानके जो साधनसंपत्तिके लियेही त्याग करो तो भी ठीक नहीं, क्योंके संन्यासिलये पीछें भी हरिक्लेहरहितनको संग् होय-वेकी विशेष संभावना है, भक्तसंग होयवेकी नहीं, और -किलकालके वलसूं धीरे धीरे विषयनमें फसतो आपभी पापंडी -होय जाय, और विषयमें फसे हैं देहेन्द्रियादिक जिनके ऐसे पुरुपनमें श्रीहरिको प्रवेश सर्वथा नहीं होय है, तासूं या समयमें भक्तिमार्गमें साधनसंपत्तिके लिये संन्यास लेवो सुखदेवे वारो नहीं है, यह निश्चय है।

> विरहानुभवार्थं तु परित्यागः सुखावहः । स्वीयवंधनिवृत्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा । ७ ।

अन्वय—विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते, च सः वेपः (अपि) अत्र स्वीयवंधनिवृत्त्य्र्थं अन्यथा न ।

भावार्थ-शिहरिके विरहको अनुभय होयवेके लिये गृहा-दिको परित्याग करनो यह तो उत्तम है, और या भक्तिमार्गकी रीतिके संन्यासमें त्रिदंड कोपीनकमंडलुआदि वेपभी, अपने कहाते खीपुत्रादिकनने किये वंधकूं दूर करवेकेलिये समझनो, और तरहसूं नहीं।

क० समा०—सीयैः वंधः स्वीयवंधः, तस्य निष्टत्तिः, तस्यै स्वीयवं-धनिष्टत्त्यर्थम् । ७ ।

कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्। भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते। ८।

अन्वय-कौंडिन्यः (च) गोपिकाः गुरवः प्रोक्ताः च साधनं तत् (तदाचरितमेवेत्वर्थः) (किं तत्) भावनया सिद्धः भावः, अन्यत् साधनं न इष्यते ।

भावार्थ-मार्यादिकमक्त श्रीकौंडिन्यऋषि और पुष्टिमक

१-आजकाल ऐसे संन्यासकी दुरवस्था प्रत्यक्ष है।

श्रीवंजभक्त ये दोनो या त्यागसवंधी भावमें उपदेश गुरु हैं, और उनने कियो सोही साधन है, (यहां उनने किये साधन वहोत हैं उनमें कोनसो प्रहण करनो, यह शंका होय है ताको उत्तर श्रीआचार्यजी लिखें है के) निरंतर विरह भावनासूं सिद्धभई प्रीतिही साधन है, औरसाधनकी अपेक्षा नहीं है। ८।

> विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं नहि । ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य वाधकाः । ९ ।

अन्वय—विकललं तथा अस्तास्थ्यं (विरहस्य) प्रकृतिः, (तत्) प्राकृतं न हि, ज्ञानं च गुणाः एवं वर्तमानस्य तस्य वाधकाः।

भावार्थ-विरहसूं उन्मत्तपनो तथा अपनी प्रकृतिमें न

१-कितनेक भापाटीकाकार या जगह लागके विषयमें कोंडिन्य तथा श्रीत्रज भक्तनको मर्यादा तथा पृष्टि यह दो भेद लिखकें निर्देश करें हैं, तथापि यह वात मूलमूं तथा श्रीगोकुलनाथजीकी टीकासूं नहीं निकसे है, मूलमें तो 'च,वा' आदि न देयवेसूं स्पष्टही लागविषयमें अभेद है और श्रीगोकुलनाथजी यों लिखे हैं के 'तासूं कोंडिन्यऋषिके किये लागको तथा पृष्टिमार्गीयलागको कितनोक भावसाम्य है तासू कोंडिन्यऋषिभी गुरू गिने हैं' या कहवेसूं यह स्पष्ट मालुम पडे है के भक्तपनेमें वह भेद रहतेभी यहां लागविषयमें तो ऐक्यही इष्ट है । तथा गोपिकानामप्युपदेपृत्वाभावेऽिप याकहवेसूं श्रीत्रजभक्तनकूंभी भावमात्रमें गुरुत्व है निक दीक्षा गुरुत्वभी, और 'दिष्ट्या' आदि दशमके श्लोकमें भी भावमात्रको उनसूं प्रवर्तन वतायो है, और यह वात है भी युक्त क्योंके 'मनोगितः' 'मानसी सा' 'सा परानुरिक्तः' इलादिवचननसूं तथा इनकी टीकानसूं भावमात्रकूं सेवा वा परभक्तिपनो निकसेहै और वाहिके गुरु श्रीत्रजभक्त होय सके हैं तासूं जो अविद्वत्पक्षवारे इन वचननके भरोसे श्रीत्रजभक्तनकूं दीक्षागुरुत्वभी लानो चाहेहें वे सर्वथा श्रान्त हैं। और या मार्गके गूढ शत्र है यह स्पष्ट है। अनुवादकर्ता।

रहनो ये दोनो विरहकी अवस्था हैं, खस्थप्रकृतिकी दशा नही हैं यह निश्चय हैं, 'सर्व ब्रह्म है' इत्यादिज्ञान तथा गुण ये ऐसी अवस्थामें वर्तमान भक्तके भावके वाधक हैं। ९।

सत्यलोके स्थितिज्ञीनात्संन्यासेन विशेषितात्। भावना साधनं यत्र फलं चाऽपि तथा भवेत् ।१०१ अन्वय—संन्यासेन विशेषितात् ज्ञानात् सत्यलोके स्थितिः (भवति) च यत्र (यादृशी) भावना साधनं (तत्र) फलं अपि तथा भवेत्।

भावार्थ—संन्याससूं उत्तमताकूं प्राप्तभये ज्ञानसूं सत्यलोककी गति मिलै है, कारणके जा मार्गमें जैसी भावना साधन होय वासूं फलभी वैसोही मिलै है। १०।

> ताहः शाः सत्यलोकादौ तिष्ठंत्येव न संशयः। विद्येत्रकटः स्वात्मा विद्ववत्प्रविशेद्यदि। ११। तदैव सकलो वंधो नाशमेति न चान्यथा।

अन्वय—तादृशाः सत्यलोकादौ एव तिष्ठंति न संशयः, (भक्तौ तु) चेत् वहिः प्रकटः स्वासा वहिवत् यदि (पुनः) प्रविशेत्, तदा एव सकलः वंधः नाशं एति च अन्यथा न।

भावार्थ संन्यासग्रहणपूर्वक ज्ञानी लोक ब्रह्मलोक आदिमें ही खित रहें हैं, परन्तु भक्तिमार्गमें तो जो बहार प्रगट भयो खाला भगवान अग्नि जैसे काष्टमें पुन: प्रवेश करें तैसें जब भक्तनके अंत: प्रवेश करें तबही वाके सकल बंधननको नाश होय है, और तरहसूं बंधनाश संमुव नहीं है। ११।

गुणास्तु संगराहित्याज्जीवनार्थं भवन्ति हि। १२।

अन्वय--गुणाः तु संगराहित्यात् जीवनार्थ भवन्ति हि ।

भावार्थ-श्रवण कीर्तन आदिमें सदा आते प्रभुके गुण तो, भक्तनके जीवनके लिये हैं, क्योंके प्रभुको संग जहांतक न होय तहांतक भक्तलोग उन श्रीहरिके गुनन करकें हीं अपनो जीवन राखसकें हैं। १२।

भगवान्फलरूपत्वान्नाऽत्र वाधक इप्यते । स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं दयालुर्न विरुद्ध्यते । १३ । अन्वय—फल्रूपलात् भगवान् अत्र वाधकः न इप्यते, (भगवता) स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं (यतः) द्यालुः न विरुद्धाते ।

भावार्थ—भक्तिमार्गमें भगवान फलरूप है, भाव साधन है वा भावके उत्कट होयवेके लिये विरहकी अपेक्षा है, और विरहानुभवके लियेही आचार्यनने त्यागको उपदेश कियो है, तो एसी
विरहावस्थाके पूर्वही श्रीहरि अपनो स्वरूपदान करदें तो वे वाधक
कहावें तासूं कहें है के, श्रीहरि फलरूप हैं तासूं वाधक नहीं
होंय हैं, और ऐसे वचनभी नहीं कहें हैं जासूं स्वस्थता होय
जाय, क्योंके कृपापर वश हैं तासूं वा भावको विरोध नही
करें हैं।

कठि० समास-स्थास भावः सास्थ्यं, सास्थ्यहेतुः वाक्यं स्थास्थ्य-वाक्यम् । १३ ।

दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिद्धति नान्यथा । अन्वय—अयं परित्याग दुर्लभः प्रेम्णा सिद्धति अन्यथा न (सिद्धति)। भावार्थ-याप्रकारको यह मिक्तमार्गीय संन्यास दुर्छभ है, और प्रभु प्रेमसूं ही प्राप्त होय है, तप दान आदि साधननसूं दुष्प्राप है।

कठि० समास—दुःखेन लन्धुं अशक्यः दुर्लभः।

ज्ञानमार्गे तु संन्यासो द्विविधोऽपि विचारितः। १४। ज्ञानार्थमुत्तराङ्गञ्च सिद्धिर्जन्मश्रतैः परम्।

अन्वय- ज्ञानमार्गे संन्यासः तु ज्ञानार्थे च उत्तराङ्गं (इति) द्विविधः अपि विचारितः परं जन्मशतैः सिद्धिः (स्यात्)।

भावार्थ—ज्ञानमार्गमें जो संन्यास है सो तो ज्ञान होय्वेके लिये तथा ज्ञानमये पीछे ऐसें दोनोही प्रकारको कहाो है, परन्तु वा दोनो तरहके संन्यास तथा ज्ञानसूं सेंकडान जन्ममें मोक्ष मिले है, क्योंके गीतामें प्रभुने अपने श्रीमुखसूं ही कही है के 'वहनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते' वहोत जन्मनके अनंतर ज्ञानवान् मोकूं प्राप्त होंय हैं।

कठि० समास—द्वे विधे यस सः द्विविधः । उत्तरं च तत् अंगं च उत्तराङ्गम् । जन्मनां शतानि जन्मशतानि, तैः । १४ ।

> ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम् । १५ । अतः कलौ स संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा । पापंडित्वं भवेचापि तस्माज्ज्ञाने न संन्यसेत् । १६। सुतरां कलिदोषाणां प्रवलत्वादिति स्थितम् ।

अन्वय-यज्ञादिश्रवणात् ज्ञानं च साधनापेक्षं मतं, अतः कलौ सः संन्यासः पश्चात् तापाय (भवति) अन्यथा (च) न, च पापंडिलं अपि भवेत्, तस्मान् फिटरोपाणां सुनरां प्रवट-लात् ज्ञाने न संन्यसेत् इति स्थितम् ।

भावार्थ—वेदमं चित्तगृद्धि आदिके लिये निष्कामयज्ञादि करवेकी आज्ञा है तासूं ज्ञानभी अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारभी साधनकी अपेक्षा राखे है ऐसो मान्यो है, और वे साधन कलियुगमें वनने मुद्दिकल हैं तासूं वह विविदिण दशाको संन्यास पश्चात्ता-पमात्र फलके लिये है, और विद्वत्संन्यासभी ताहीमुं नहीं सिद्ध होय सके है, तथा जो सहसा संन्यास ले तो थोडे दिनमें समयवश्मसं पापंडी होयके नष्ट होय जाय है, तासूं यासमयमें कलिकालके अनेक दोप अत्यंत प्रवल हैं यह समझके ज्ञानमार्गमं संन्यासलेनो नहीं, और याहीसूं शास्त्रनमें निपेधभी कियो हैं। १५-१६।

भक्तिमार्गेऽपि चेद्दोपस्तदा किं कार्यमुच्यते । १७ । अत्रारम्भे न नाशः स्यादृष्टान्तस्याप्यभावतः । स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद्वाधः केनाऽस्य संभवेत्।१८।

अन्वय—भक्तिमार्गे अपि दोप: तदा किं कार्य इति चेत् -(तर्हि) उच्यते, आरंभे दृष्टान्तस्य अपि अभावतः अत्र नाशः न स्थात्, स्वास्थ्यहेतोः परित्यागात् अस्य वाधः केन संभवेत्।

भावार्थ—भक्तिमार्गमंभी किलयुगके दोप वाध करें तो कहा करनो ऐसें जो मनमें विचार होय तो वाके लिये कहें हें के कोई ऐसो दृष्टान्त नहीं मिले है तासूं या भक्तिमार्गीय संन्यासके आरंभमें नाश होयवेकी संभावना नहीं हैं, अपने खरूपमें खितरहवेके कारणवारे या भक्तिमार्गीय संन्यासकूं प्राप्त

होयंक भक्तको वा खितिस्ं गिरनो केसं होय सके है, अर्थात् अनुप्रह प्राप्त प्रेमरूपा भक्तिही इतनी समर्थ है के वाके आरंभमं किये परिखागमें कालादिक कोईभी प्रतिवंध नहीं करसके है।

कठि० समास—समितिष्टतीति सस्यः, सस्यस भावः स्तास्थ्यं, तस्य हेतुः, तसात्० । परित्यागं प्राप्य इति स्यन्स्टोपे पञ्चमी । १७-१८ ।

हरिरत्र न शक्तोति कर्तुं वाघां कुतोऽपरे। अन्यथा मातरो वालान्न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित्।१९। 'ज्ञानिनामपि' वाक्येन न भक्तं मोहयिप्यति। आत्मप्रदः प्रियश्चाऽपि किमर्थं मोहयिप्यति। २०।

अन्वय—अत्र हरि: (अपि) वांवां कर्तुं न शक्नोति, अपेर कृतः, अन्यथा मातरः वालान् स्तन्येः क्रिचिन् अपि न पुपुपुः झानिनां अपि (इति) वाक्येन भक्तं न मोहयिष्यति आत्मप्रदः च प्रियः अपि (भगवान्) (मक्तं) किमर्थं मोहयिष्यति।

भावार्थ—या परित्यागमें खयं भगवान्भी प्रेमवशहोयके जब वाया नहीं करसकें हैं तो फिर कालादिककी कहा चलाई, यदि श्रीहरिभी अपने भक्तनकूं वायकरते तो फिर लोकमें माता भी अपने वालकनकूं दुयसुं कभीभी पालन नहीं करती, अर्थात् जैसें लोकमें माता अपने वालकनको पालन अपने दुयसुं करें हैं, किन्तु कभीभी उनकूं दुःख नहीं देसकें हैं तैसेही श्रीहरिभी अपने भक्तनके परिलाग करवेमें वाय नहीं करसकें हैं, (याही अर्थकूं स्पष्ट करे हैं)के मार्कडेयपुराणके ज्ञानिनामिप चेतांसि देवी भगवती हि सा । वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छिति ॥' समर्थ ऐसी भगवच्छिकरूपा महामाया देवी जो है सो ज्ञानिनके मनकूंभी जबरदस्ती खेंचके मोहमें पटक दे हैं '

या वचनसूं मालुम पडे है के श्रीहरि केवलज्ञानीनकूं तो मोह करवायदें हें, परन्तु अपने भक्तकूं मोह नहीं करावेंगे, भगवान सवकूं अपनो स्तरूप देवेवारे हैं तथा प्रिय हैं, तासूं अपने भक्त-नकूं कायके लियें मोह करामेंगे, अथवा 'यह मेरो भक्त आसा-सहित सर्व अपण करवेवारो हैं तथा मोकूं अत्यंत प्रिय हैं,' यों जानकें क्यों मोह करामेंगे। १९-२०।

> तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम् । अन्यथा भ्वश्यते स्वार्थादिति मे निश्चिता मतिः २१ इति कृष्णप्रसादेन वछभेन विनिश्चितम् । संन्यासावरणं भक्तावन्यथा पतितो भवत् । २२ ।

अन्वय—तस्मात् उक्तं प्रकारेण परित्यागः विधीयतां, अन्यथा स्वार्थात् भ्रदयते इति में निश्चिता मतिः, इति वह्नभेन कृष्णप्रसा-देन भक्तौ संन्यासावरणं विनिश्चितं, अन्यथा पतितः भवेत्।

भावार्थ—किल्युगमें अन्यमार्गीय परित्याग दोपयुक्त हैं तासूं हमारे कहे अथवा 'तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य॰' इत्यादिश्लोकनकरके एकादशमें प्रभुने उद्धवजीसूं कहे प्रकार करकें परित्याग करनो, और तरहसूं करे तो भगवदनुप्रहरूप अपने स्वार्थसूं नीचो गिरे है, यह मेरी निश्चित बुद्धि हैं, या रीतिसों श्रीवह-भाचार्यने श्रीहरिकृपाकरकें भक्तिमार्गमें संन्यासको उत्तम अंगी-कार निश्चय कियो, यासूं और तरह जो संन्यासको स्वीकार-करें तो कालादिके वश होय पतित होय है। २१-२२।

। इति संन्यासनिर्णयत्रजभाषां सम्पूर्णा 1

व्रजभाषामें

निरोधलक्षणकी टीका।

यच्च दुःखं यशोदाया नंदादीनां च गोकुछे।
गोपिकानां तु यहुःखं तहुःखं स्थान्मम क्वचित्।१।
अन्वय—गोकुछे यशोदायाः च नन्दादीनां च यत् दुःखं

(आसीत्) तु गोपिकानां यत् दुःखं, तत् दुःखं कचित् मम स्यात्।

भावार्थ—श्रीगोकुलमें श्रीव्रजरानी तथा श्रीनंदरायकूं आदि-लेकें गोपनकूं तथा औरभी श्रीहरिके संबंधवारेनकूं जा तरहकी विरह वेदना भयी, तथा श्रीगोपीजननकूं जा तरहकी विरह-वेदना भयी वैसो विरह कभी मोकूंभी होयगो, अथवा वैसो विरह दु:ख मेरे भी देहेन्द्रियादिमें होयगो ? । १ ।

गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् । यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान्कि विधास्यति । २ ।

अन्वय--गोकुले गोपिकानां च सर्वेपां व्रजवासिनां यत् सुखं समभूत् तत् सुखं किं भगवान् मे विधास्यति ?।

भावार्थ-श्रीगोकुलमें श्रीगोपीजननकूं, गोपनकूं तथा अन्य व्रजमें रहवेवारे पशुपक्षीनकूं श्रीहरिकी वाल्लीलादिकनसूं जैसो सुख भयो वैसो सुख प्रभु मोकूं भी देंगेक्या ?।२।

> उद्भवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा। वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्। ३।।

अन्त्रय-वृन्दावने वा गोकुहे, उद्धवागमने (सित) यथा सुमहान् उत्सवः जातः तथा मे मनसि कचित् (स्यात्)।

भावार्ध-श्रीवृन्दावनमें तथा श्रीगोक्तलमें जब श्रीउद्धवजी आये वासमयमें श्रीगोपीजननकूं तथा श्रीयशोदादिनकूं जो आनंद भयो वैसो आनंद मेरे मनमेंभी कभी होयगो ?। ३।

महतां कृपया यावद्मगवान् दययिप्यति । तावदानंदसंदोहः कीत्यमानः सुखाय हि । ४ ।

अन्वय-महतां कृपया भगवान् यावत् दययिष्यति, तावत् कीर्छमानः आनंदसंदोहः सुखाय हि ।

भावार्थ—श्रीव्रजभक्तनके अनुग्रहसूं श्रीहरि जवतक फल-देयवेकी दया करें, तवतक अर्थात् साधन दशामेंभी नित्यकीर्तनमें आते आनंदरूप जो प्रभुके गुणानुवाद हैं सोभी आनंद देवेवारे होंय हैं यह निश्चय है। ४।

महतां कृपया यद्धत्कीर्तनं सुखदं सदा ।
न तथा लौकिकानां तु स्तिग्धभोजनरूक्षवत् । ५ ।
अन्वय—महतां कृपया (भक्तकृतं) कीर्तनं यद्वत् सदा
सुखदं (अस्ति) तद्वत् लौकिकानां (कीर्तनं) तु स्तिग्धभोजनरूक्षवत् तथा न (भवति)

भावार्थ—बडनेक अनुबहसूं प्राप्तभयों जो हरिगुणनको कीर्तन, सो जैसें सदा सुखदेनेवारों है, तैसें लोकसूं संबंध राखनेवारे पुरुषनने कियों कीर्तन, सुख नहीं देय है, वामें दृष्टान्त दें हैं के जैसें क्षिण्धभोजनकरवेवारेकूं रूखों भोजन अच्छों न लगै तैसें। काठि० समास—सिग्धं भोजनं यस सः स्निग्धभोजनः, तसी रूक्षं सिग्धभोजनरूक्षं, तेन तुल्यं स्निग्धभोजनरूक्ष्वत् । ५ ।

> गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविंदस्य प्रजायते । यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः । ६ ।

अन्वय—ग्रुकादीनां यथा गोविन्दस्य गुणगाने सुखावाप्तिः प्रजायते, तथा आसनि न एव अन्यतः कुतः ।

भावार्थ-श्रीशुकदेवजीकूं आदिलेकं जितने मुक्तभक्त हैं उन्हें जैसी सुखकी प्राप्ति श्रीहरिके गुणगायनेमें होय है, तैसी सुखप्राप्ति स्वरूपज्ञानमें अर्थान् मोक्षमेंभी नहीं होय है और तरह तो कैसे होय। ६।

> क्किश्यमानाञ्जनान्द्वया कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वे सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं वहिः। ७।

अन्वय—क्रिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा यदा कृपायुक्तः भवेत् तदा हृदिस्यं सर्वे सदानंदं वहिः निर्गतः (स्यात्)।

भावार्थ—गुणगान करतें करतें अपने भक्तनकूं अपनी प्राप्तिके लिये अत्यंत छेशपाते देखकें श्रीकृष्ण जब कृपायुक्त होंय हैं, तब हृदयमें सदा विराजते सदानंदस्वरूप श्रीनंदनंदन परब्रह्म वाहर प्रकट होंय हैं। ७।

सर्वानन्दमयस्याऽपि कृपानंदः सुदुर्छभः।
हद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्रावयते जनान्।८।
अन्वय—सर्वानंदमयस्य अपि कृपानंदः सुदुर्छभः, हृद्गतः
(सः) स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः (सन्) जनान् प्रावयते।

भावार्थ—सर्वप्रकारस्ं आनंदस्यस्प ऐसे श्रीप्रमुकोभी कृपा-स्प आनंद असंत दुर्लभ है, हृदयमें प्राप्तभयो वह ममवत्कृपानंद जव अपने गुणानुवादनक्ं सुनकें पूर्ण होय है तव अपने भक्त-नक्ं वा प्रेमानंदमें मग्न करदे है, यहां धर्म और धर्मीको ऐक्य होयवेसं कृपाकं भी आनंदस्य कही है एसं समझनो । ८ ।

> तसात्सर्वे परित्यन्य निरुद्धेः सर्वदा गुणाः । सदानंदपरैर्गेयाः सिच्चदानंदता ततः । ९ ।

अन्वय—तस्मात् सदानंद्परै: (अतएव) निरुद्धैः (भाग-वतै:) सर्वे परित्यज्य सर्वदा गुणाः गेयाः ततः सिच्चिनंदता (भवेत्)।

भावार्थ—भक्तिमार्ग सर्वोत्तम है तासूं सदानंद श्रीहरिकों आश्रय छेवे वारे और याहीसूं प्रभुने अपनेमें जिनको निरोध करछीनो है ऐसे भगवदीयनकूं सर्व छौकिक वैदिक साधननकूं छोडकें सदा श्रीभगवानके गुणनको गान करनो चहिये, ऐसी-रीतिसूं गुणगानकरवेसूं जीवकूं सचिदानंदपनो प्राप्त होय है।

क० स०—सत् च चित् च आनंदश्च एतेषां समाहारः, सचिदानन्दं, सचिदानंदस्य भावः तत्ता । ९।

अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः। निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते। १०।

अन्वय—रोधेन निरुद्धः तु निरोधपद्वीं गतः अहं (छौकिके) निरुद्धानां रोधाय ते निरोधं वर्णयामि ।

भावार्थ-अनने भक्तनकूं अपने प्रेममें लगायनेके आप्रहसूं

श्रीहरिने खयं, मेरे मनकूं औरपदार्थनकूं भुलायकें अपने चर-णारिवन्दमें लगाय राख्यो है, और ताही छुं निरोधरूप फलकूं प्राप्त भयो में, जो लौकिकमें आसक्त होय रहे हैं उन अधिका-रीनके प्रति निरोधको वर्णन करूं हूं, न्त्रीपुत्रादिप्रपञ्चकूं भूलेंक प्रभुमें आसक्ति होयवेकूं, निरोध कहें हैं। १०।

> हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते भग्ना भवसागरे । ये निरुद्धास्त एवाऽत्र मोदमायान्त्यहर्निशम् । ११ ।

अन्वय-ये हरिणा विनिर्मुक्ताः ते भवसागरे मग्नाः, (किंच) ये निरुद्धा ते एव अत्र अहर्निशं मोदं आयान्ति ।

भावार्थ— 'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः' इस्यादिभगवद्वचननस्ं मालुम पडे है के जिनजीवनकी श्रीहरिने नेक उपेक्षा करदीनी है, वे या अहंताममतारूप संसारसागरमें इव जाँय हें, अर्थात् जन्ममरणादिके प्रवाहमें ही पडेरहें हैं, और जिन्हें श्रीहरिने अपने जानकें रोके है अर्थात् अपनाये हैं वे जीव रात्रिदिन या गुणगानादिभक्तिमें आनंदकूं प्राप्त होंय हैं।

क• स•—भव एव सागरः भवसागरः तसिन्०। अहश्र निशा च अहनिशम् । ११।

संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै । कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् । १२ । अन्वय—संसारावेशदुष्टानां इन्द्रियाणां हिताय सर्ववस्तूनि

अन्वय—संसारावंशदुष्टाना इन्द्रियाणां हिताय सर्ववस्तूनि ईशस्य भूम्नः कृष्णस्य वै योजयेत् ।

भावार्थ-अहंता ममतारूप संसारको सवतरहसुं प्रवेश होयवे करकें दोपवारीं भई-ऐसी इन 'रसना' आदि इन्द्रियनके हितके लिये अर्थात् भगवत्संवंध होयवेस्ं ग्रुद्ध होयवेके लिये, इन्द्रियनको जिनस्ं संवंध रहतो होय उन सर्व वस्तूनक् सर्वनि-यन्ता तथा सर्वत्र व्यापक श्रीहरिमें लगावे, तथा इन्द्रियादि-स्वीयवस्तूनको भी श्रीहरिमें विनियोग करै।

क. स. सम्यक् सरणं संसारः, दृढं ख़रुपात् च्यवनिष्वर्थः । संसारख आवेशः संसारावेशः, संसारावेशेन दुष्टानि संसारावेशदृष्टानि, तेषाम् । १२।

गुणेप्वाविष्टिचतानां सर्वदा मुरवैरिणः। संसारविरहक्केशो न स्थातां हरिवत्सुखम्। १३।

अन्वय-मुरवैरिण: गुणेपु सर्वदा आविष्टचित्तानां संसार-विरहक्केशौ न स्थातां, हरिवत् सुखं (स्थात्)।

भावार्थ-मुरनामा दानवके मारनवारे श्रीहरिके गुणानुवा-दमें जिनको चित्त सदां लगो रहे है उन भक्तनकूं संसार तथा प्रमुकोविरह अथवा अपनी प्रियवस्तूको विरह नहीं होय है किन्तु श्रीहरिकी तरह वे भी सर्वदा आनंदमें मन्न रहें हैं।

क० समा०--आविष्टं चित्तं येषां ते आविष्टचित्ताः, तेपाम् । संसारश्च विरहेक्ष्टशश्च संसारविरहक्केशौ । १३ ।

> तदा भवेदयालुत्वमन्यथा ऋ्रता मता। वाधशंकाऽपि नास्त्यत्र तदध्यासोपि सिद्धाति।१४।

अन्वय—तदा दयालुत्वं भवेन् अन्यथा क्रूरता मता, अत्र वाधरांका अपि न अस्ति, (यतः) तद्ध्यासःअपि सिद्ध्यति ।

भावार्थ—जव यातरहस्ं संसार और विरहक्केश आदिकी निवृत्ति हो जाय, तव श्रीहरिमें दयालुपनो सिद्ध होय है और

यदि ऐसं न होय तो अनुप्रह नहीं है ऐसं जाननो, श्रीहरिके गुणगानादि करवेमें कोई तरहकी कालकर्मादिद्वारा हानि भी नहीं होय है क्योंके भक्तकूं देहमेसुं अहंभाव छूटकें 'श्रीहरि मेरेहें में श्रीहरिकोहं' यह भाव होय जाय है। १४।

> भगत्रद्धर्मसामर्थ्याद्विरागो विषये स्थिरः। गुणहरेः सुखस्पर्शान्त दुःखं भाति कर्हिचित्। १५।

अन्वय-भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विषये स्थिरः विरागः (भवति) गुणैः हरेः सुखस्पर्शान् । कर्हिचित् दुःखं न भाति ।

भावार्थ—प्रतिदिन गानकरवेमें आते श्रीहरिके जो ऐख-र्यादि छ मुख्यधर्म उनके सामर्थ्यस्ंही भक्कं विषयनमें हढ-वैराग्य होय जाय हैं, और गुणानुवादनके प्रभाव करकें हृद्यमें प्राप्तभये श्रीहरिके आनंददायक स्पर्श होय वेस्ंकभी कोई तरहके दु:खको भान नहीं होय है।

क० समास—समर्थस मात्रः मामर्थ्य, मगवतः धर्माः (ऐश्वर्य, वीर्य, यशः, श्रीः, ज्ञानं, वैराग्यं,) मगवद्धर्माः, तेषां सामर्थ्यं मगवद्धर्म-मामर्थ्यं, तसात्० । १५ ।

> एवं ज्ञात्त्वा ज्ञानमार्गादुत्कर्प गुणवर्णने । अमत्सरेरलुन्धेश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः । १६ ।

अन्वय-एवं ज्ञानमार्गात् गुणवर्णने उत्कर्प ज्ञात्ना, अम-त्सरे: च अलुव्ये: सदा (हरे:) गुणाः वर्णनीयाः।

भावार्थ-या रीतिस्ं श्रीहरिके गुणवर्णनमं ज्ञानमार्गस्ं अधिकता जानके ईप्यी और होभस्ं रहित भक्तकः निरंतर श्रीहरिके गुणानुवादही करने चहियं। क० समास-ज्ञानमेव मार्गः, तस्रात्०। नास्ति मत्सरो येषु ते अमत्सराः, तैः । १६।

हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादिष तत्र हि। दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा। १७। श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णिप्रये रितः। पायोर्मलांशत्यागेन शेपभागं तना नयेत्। १८।

अन्वय—हरिमूर्तिः सदा ध्येया हि संकल्पात् (प्रकाशितायां) तत्र (मूर्तें) सदा दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं, तथा कृतिगती श्रवणं कीर्तनं अपि (भवति) स्पष्टं कृष्णप्रिये पुत्रे रितः, पायोः मलांशत्यागेन शेपभागं तनौ नयेत्।

भावार्थ-शिहरिक स्वरूपको ध्यान सदां करते रहनो क्योंके भावमात्रस्ं हृदयमें प्रगट भये वा भगवत्स्वरूपमें देखनो, स्पर्शकरनो, स्पष्ट होय हैं, तथा करनो चलनो श्रवण करनो कीर्तनकरनो, येभी स्पष्ट होय है, श्रीहरिकेप्रिय पुत्रादिमें प्रीति-करनो, पायुके मलांशकूं छोडकें अन्नादिके वाकी रहे भागकूं शरीरमें प्राप्त करनो। १७-१८।

यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न हक्यते। तदा विनिमहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः। १९।

अन्वय—यस्य वा यदा भगवत्कार्यं स्पष्टं न दृश्यते, तदा तस्य विनिग्रहः कर्तव्यः इति निश्चयः।

भावार्थ-जिन पुत्रादिकनमें अथवा इन्द्रियादिकनमें जव स्पष्टरीतिसूं भगवत्संबंधी सेवा आदि कोईभी कार्य न दीखते होंय, तो तब उनउनको अच्छीतरह निप्रह करनो यह निश्चय है। अर्थात्-श्रीहरिके सन्मुखनसूं प्रीतिकरनी, उदासीननकुं नियममें करने और प्रतिकृछनको परित्याग करनो यह कम है। १९।

पूर्वोक्तवात सदां सारण राखनी ताके छिये वाकी सर्वोचता वतावे हैं

नातः परतरो मंत्रो नातः परतरः स्तवः । नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम् । २०।

। इति श्रीमद्वरमाचार्यविरचितं निरोधलक्षणं सम्पूर्णम्।

अन्त्रय—अतः परतरः मंत्रः न (अस्ति) अतः परतरः स्तवः न, अतः परतरा विद्या न, अतः परात्परं तीर्थं न।

भावार्थ—निरोधके विषयमें यासूं ऊंचो कोई मंत्र नहीं है, और यासूं श्रेष्ठ कोई स्तुतिभी नहीं है तथा यासूं उत्तम कोई विद्याभी नहीं है ऐसेंहीं यासूं परें कोई तीर्थभी नहीं है।२०।

। इति श्रीनिरोधलक्षणत्रजभाषा सम्पूर्णा ।

व्रजभाषामं

सेवाफलकी टीका।

यादृशी सेवना प्रोक्ता तिसद्धी फलमुच्यते । अलैकिकस्य दाने हि चाद्यः सिद्ध्येन्मनोरथः । १। फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोऽत्र नियामकः ।

अन्वय—यादशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धी फलं उच्यते, हि अलौकिकस्य दाने च आदाः मनोरयः सिद्ध्येन्, वा फलं (सिद्ध्येन्) वा अधिकारः, अत्र कालः नियामकः न ।

भावार्थ—सिद्धामुक्तावलीयंथमं जा तरहकी सेवा (मानसी) कह आये हैं ताकी सिद्धि होयवेसूं जो फल होय है सो कहें हैं, प्रमु अनुप्रह करकें जो अलौकिक सामर्थ्यको दान करें अर्थात् अपने साथ कामाशनादि कीडा आदिको दान करें तो प्रथम मनोरथ (फल) सिद्ध होय है, और जो सहयोग अर्थात् व्रजवासीनकी तरह संग रहवे मात्रको दान करें तो मध्यम फलकी सिद्धी होय है, और जो सेवोपयोगी देहरूप अधिकारको दान करें तो तृतीयफलकी सिद्धि होय है, फलदेयवेमें काल नियामक नहीं है, कोनसो फल कोनकूं देनो याको नियामक भगवदनुप्रह है।

कठि० समास—तस्राः सिद्धिः तिसिद्धिः, तस्राम्० । १ । उद्वेगः प्रतिवंधो वा योगो वा स्यान्तु त्राधकः । २ ।

अकर्तव्यं भगवतः सर्वथा चेहतिर्न हि। यथा वा तत्त्वनिर्धारो विवेकः साधनं मतम्। ३।

अन्वय—किं तु उद्वेगः वा प्रतिबंधः वा भोगः बाधकः स्यात्, चेत् भगवतः, सर्वथा अकर्तव्यं (तार्ह) हि गतिः न, वा यथा तत्वनिर्धारः (तथा) विवेकः साधनं मतम्।

भावार्थ—किन्तु कोईतरहकीभी मनकी घवराट, विन्न, और भोग, ये तीनो फलमें बाधक हैं, श्रीहरिकूं यदि सर्वथा फलदे-यवेको न होय तो फिर कोईतरहको उपाय नहीं है, फिरतो अप-नेमें आसुरपनेको जैसो निश्चय होय जाय ताके अनुसारही ज्ञान तथा ज्ञानके साधनको आचरण करनो यह शास्त्रसंमत है और वाको ज्ञानही साधन है, अर्थात् वो अधिकारी ज्ञानमार्गमें रहै। २-३।

बाधकानां परित्यागो भोगेप्येकं(१)तथा परम् । निष्प्रत्यृहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा । ४।

अन्वय—वाधकानां परित्यागः (कर्तव्यः) भोगे अपि एकं (परित्याज्यम्) तथा परं निष्प्रत्यूहं, (यतः) महान् भोगः प्रथमे विश्रते, (किंच) महान् (प्रतिवंधः) सदा।

भावार्थ— उद्देग, प्रतिबंध, और भोग, इन तीनो बाध-कनको सब तरहसूं त्यागकरनो, पर भोगमें लौकिकभोगको परित्याग करनो, तेसें हीं प्रतिबंधमें भी साधारण प्रतिबंधको त्यागकरनो, क्योंके अलौकिकभोग और भगवत्कृत प्रतिबंध ये दोनो त्यागकरवेकूं अशक्य हैं, ताको हेतु वतावें हैं के अलौकि-कभोग अर्थात् अलौकिकसामध्य, उत्तम फलमें गिन्यो जाय है तासूं त्यागकरवे लायक नहीं हैं और भगवत्कृत प्रतिवंध भी सदा रहे है तासूं त्यागकरवेकूं अशक्य है, अर्थात् एक भोग फल है तासूं, और एक प्रतिवंध प्रमुकृत है तासूं, अत्याज्य है।

कठि० समास--निर्गतः प्रत्यृह्ये यसात् तत्० । ४ ।

सविघ्नोऽल्पो घातकः स्याद्वलादेती सदा मती । द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात् । ५।

अन्वय—सदा, एतौ (हौिकको भोगः) सिवन्नः अल्पः (च)(साधारण: प्रतिवंधः) वहात् घातकः (इति) मतौ, द्वितीये संसारनिश्चयात् सर्वथा चिन्ता त्याज्या।

भावार्थ—सदा, लोकिक भोग, आधिव्याधि आदि अनेक विभ्रनस्ं युक्त है, तथा थोडो है, और साधारण प्रतिबंधभी अपने सामर्थ्यस्ं हानिकरवेवारो है तास्ं यह दोनो शास्त्रमें परित्यागकरवे लायक माने हैं, और प्रभुके करे प्रतिवंधमें तो संसारको निश्चय होयवेस्ं सर्वथा चिन्ताको त्याग करै, क्योंके गीतामें प्रभुने 'क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु' इत्यादि वाक्यनस्ं यह निश्चय करदीनोहे के आसुर जीव सदा संसारमें ही पड़े रहें हैं। ५।

तन्वाचे दातृंता नास्ति तृतीये वाधकं गृहम्। अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन्मनोभ्नमः। ६।

अन्वय—आचे दातृता न अस्ति (इति) ननु, तृतीये गृहं वाधकं, इयं अवश्या भाव्या, अन्यत् सर्वे मनोभ्रमः।

भावार्थ—जो पहलो उद्देगरूप प्रतिवंध होय तो समझनो के श्रीप्रमुक्कंही फल देववेकी इच्छा नहीं है, और तीसरो भोगरूप

प्रतिवंध आवे तो गृह आदिकूं वंधनकरवेवारे समझने यह निश्चय है, या रीतसूं तीनो तरहके प्रतिवंध और तीनो तरहके भोग यह जीवके वशमें नहीं हैं ऐसें विचारनो, यासूं अन्य विचार केवल मनके भ्रम हैं।

कठि० समास-न वश्या अवश्या । मनसः भ्रमः मनोभ्रमः । ६।

तदीयैरिप तत्कार्य पुष्टो नैव विलंबयेत्। गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मितः। ७। क्रसृष्टिरत्र वा काचिदुत्पचेत स वै श्रमः।

। इति श्रीमद्वहभाचार्यविरचितं सेवाफलं सम्पूर्णम् ।

अन्वय—तदीयैः अपि तत् कार्यं, पृष्टौ न एव विलंबयेत् गुणक्षोभे अपि एतत् एव द्रष्टन्यं इति मे मतिः वा अत्र काचित् कुरुष्टिः उत्पदोत सः वै भ्रमः।

भावार्थ—भगवत्संवंधी पुरुपनकूंभी फल और प्रतिवंधनको विचार राखनो चहिये, अनुप्रहकरनेमें श्रीहरि कभी विलंब नहीं करेंगे, सत्वादि गुणनकरकें जब कोईतरहको विकार उत्पन्न होय तो वा समयमेंभी 'प्रभुनेही फलदेयनेमें विलंब विचार्यो है' ऐसें समझनों यह मेरी बुद्धि है, यावक्तिमें जो कोईकूं सन्देहादि उत्पन्न होय तो वो भ्रममात्र है। ७।

। इति सेवाफलत्रजभाषा सम्पूर्णा ।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु.

षोडशत्रंथ सम्पूर्ण ।

